Gurutattva™

योग से समग्र योग

समग्र योग परमात्मा से जुड़ने का मार्ग है।

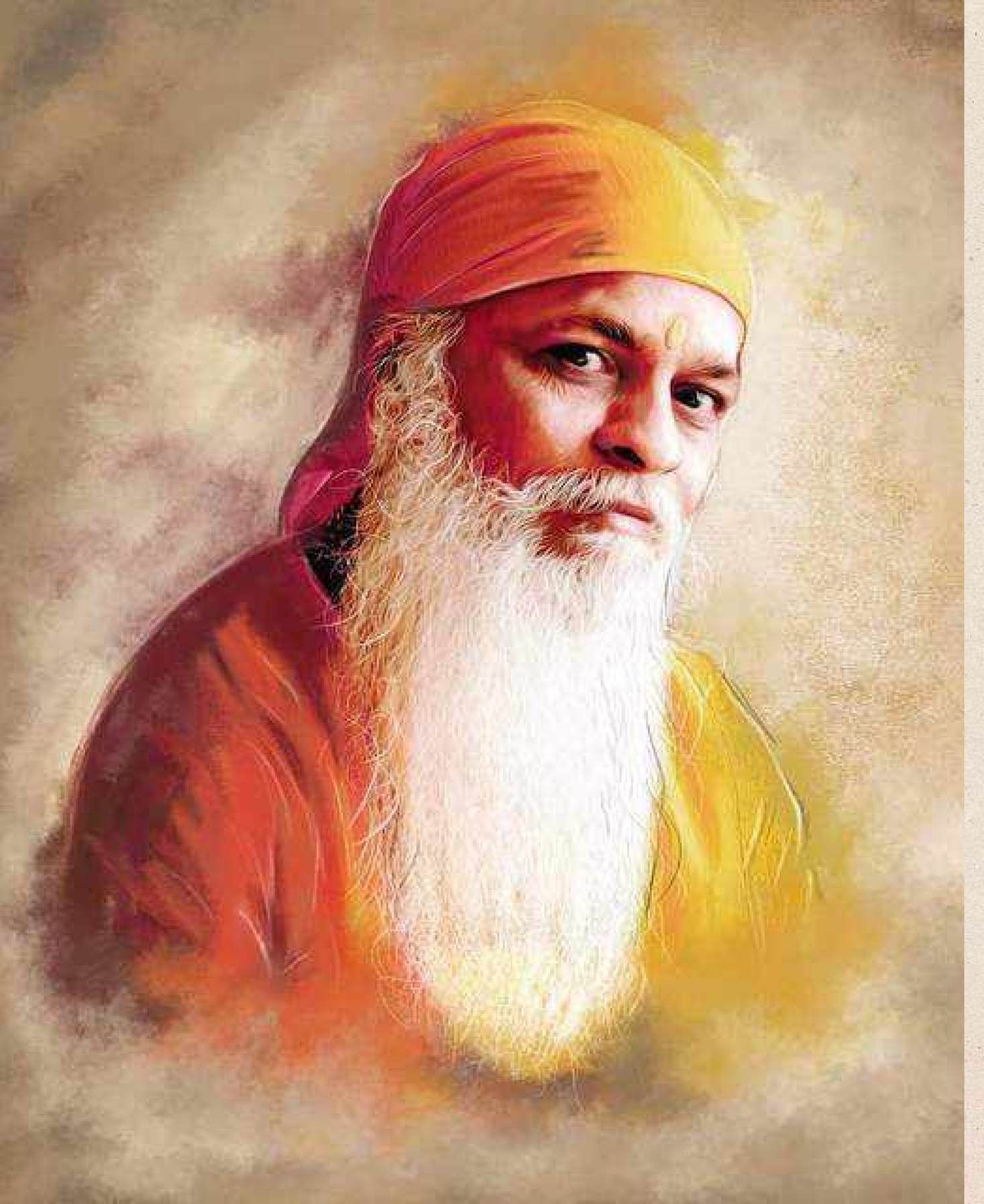

प्रस्तावना

हमारे पार्थिव शरीर में बस रहे चैतन्य के कारण हम अपने-आपको जीवित पाते हैं। इस आत्मतत्त्व की यानी स्वयं के अस्तित्व की पहचान होना योग से संभव है। योग केवल शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है, उसका क्षेत्र बहुत विशाल है।

'योग से समग्र योग' प्रदर्शनी हिमालय के महर्षि एवं समर्पण ध्यानयोग संस्कार के प्रणेता परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी के योग संबंधित अनेकों विषयों का संकलन है। चूंकि पूज्य गुरुदेव वर्तमान समय के अनुरूप अति सरल भाषा में बताते हैं, इसलिए योग जैसे गहन आध्यात्मिक क्षेत्र को समझने में हमें काफी सहायता मिलती है। इसके साथ-साथ पातंजल योगदर्शन, योगशास्त्र, श्रीमद् भगवद् गीता, कठोपनिषद जैसे महान ग्रंथों के कुछ संदर्भ भी अनुवाद के साथ इसमें लिए गए हैं।

हमें आशा है कि यह 'योग से समग्र योग' सचित्र प्रदर्शनी योग के विशाल आयामों को समझने में पाठकजनों को मददगार साबित होगी।

विषय सूची

1	योग – भारत की प्राचीन धरोहर	4
2	योग का अर्थ	5
3	योग का उद्देश्य	6
4	शरीरभाव और आत्मभाव	7
5	योग एक अनुभूति का ज्ञान है	9
6	यौगिक विज्ञान के कुछ तत्त्व	10
7	चक्रों की शुद्धि से प्राप्त हो सकते लाभ	17
8	शुद्ध चित्त से आशय	20
9	चित्त की लाक्षणिकता	20
10	चित्त खराब कैसे होता है?	20
11	विचार और चित्त	22
12	परमात्मा में लीन चित्त	23
13	गुरु और सद्गुरु	25
14	'सद्गुरु' - आज के युग की आवश्यकता	26
15	आत्मसाक्षात्कार क्या है...	27
16	सद्गुरु से आत्मसाक्षात्कार	28
17	आत्मजागृति की अनुभूति	29
18	समर्पण ध्यानयोग के कुछ तत्त्व - परमात्मा	30
19	धर्म	31
20	सद्गुरु	32
21	समर्पण ध्यानयोग	33
22	साधना	36
23	अष्टांग योग	37
24	योगासन 'योग' नहीं है	47
25	आत्मा तक पहुँचने के दो मार्ग हैं।	49
26	योग का सही प्रचार – आज की आवश्यकता	52
27	मानवधर्म को विकसित करने का एकमात्र मार्ग योग	53
28	आत्मशान्ति से विश्वशान्ति की शुरुआत	54

योग – भारत की प्राचीन धरोहर

- **योग हिन्दु संस्कृति की देन है, यह सत्य है। इसमें कोई शंका नहीं है।**
- **लेकिन हिन्दु संस्कृति को कुछ लोग हिन्दु धर्म कहकर छोटा कर रहे हैं।**
- **हिन्दु संस्कृति समस्त मानवजाति का कल्याण चाहती है।**

- वास्तव में धर्म की एक सीमा होती है। हिन्दु धर्म की कोई सीमा नहीं है। यह इसलिए है कि हिन्दु (हिन्दुत्व) धर्म नहीं है, हिन्दु संस्कृति है जो प्रकृति के साथ जुड़ी हुई है।

- जिसमें अनेक देवता हैं, अनेक गुरु हैं, ध्यान की अनेक पद्धतियाँ हैं, योगासन है, प्राणायाम है, ध्यान है, शास्त्रीय संगीत है, वादन है, नृत्य है, शास्त्र है, पशु देवता है, वृक्ष देवता है, नदी देवता, समुद्र देवता है, सूर्य देवता है, चंद्र देवता है। ये सभी तो प्रकृति से जुड़े हैं। इसीलिए हिन्दु संस्कृति को हिन्दु धर्म के दायरे में बाँधा नहीं जा सकता।

- **इस संस्कृति में तो प्रत्येक मनुष्यमात्र का विचार किया गया है। सारे विश्व के प्राणीमात्र के लिए सोचा गया है।**

- इसमें पूजा के माध्यम से प्रकृति के साथ जुड़ना सिखाया जाता है। पर्वत की पूजा, नदी की पूजा, पेड़ की पूजा, चंद्र की पूजा, सूर्य की पूजा, साँप की पूजा, गाय की पूजा, बंदर की पूजा वगैरह-वगैरह। यानी 'सर्वत्र परमात्मा है', यह बताने का उद्देश्य है। लेकिन लोग पूजा और कर्मकांड पकड़कर बैठ गए तो यह लोगों का दोष है, पूजापद्धति का नहीं।

- पूजा यानी किसी एक माध्यम पर चित्त एकत्र करके बाद में भीतर की यात्रा करना है। और धर्म कहलाने के लिए इसके पास न कोई एक देवता है और न एक निश्चित ग्रंथ। कोई भी निश्चित सीमा नहीं है। यह तो खुली किताब है जो आदिकाल से लिखी जा रही है और आज तक बंद नहीं हुई है। आज भी कोई गुरु आकर अपनी चार बातें उसमें जोड़ सकता है।

- **हमारी संस्कृति में 'ध्यानयोग' है, जीवंत परमात्मा की परिकल्पना है और परमात्मा मेरे ही भीतर विद्यमान है, यह विश्वास इस जगत में किसी भी देश में नहीं है, किसी भी संस्कृति में नहीं है। सभी देशों में परमात्मा की खोज बाहर की जाती है। आओ, हम हमारे 'राष्ट्र निर्माण' का प्रारंभ स्वयं के निर्माण से करें।**

योग का अर्थ

- **योग का अर्थ है जुड़ना।** मनुष्य के शरीर के साथ उसकी आत्मा का जुड़ना और जुड़ जाने के बाद वे दो नही रह जाते हैं। एक ही हो जाते हैं।
- वास्तव में योग शरीर और आत्मा का संगम है।
- सर्व सामान्य मनुष्य शरीरभाव की प्रधानता में जीता है। ऐसा न होकर आत्मा के भाव में योगी का जीवन होता है। योगी के जीवन में आत्मभाव को प्रधानता होती है।
- **योग का अर्थ है जोड़ना।** भीतर की चेतना को विश्वचेतना के साथ जोड़ना। वास्तव में योग एक समूचे जीवन का ही मेनेजमेंट होता है। आत्मिक विकास ही योग का सही उद्देश्य है।

श्रीमद् भगवद्गीता के सभी अध्यायों के साथ योग शब्द जुड़ा है, अगर सिर्फ योगासन ही योग होता तो श्रीमद् भगवद्गीता में विविध आसनों का जिक्र होता!

1. अर्जुनविषादयोग
2. साङ्ख्ययोग
3. कर्मयोग
4. ज्ञानकर्मसंन्यासयोग
5. कर्मसंन्यासयोग
6. आत्मसंयमयोग
7. ज्ञानविज्ञानयोग
8. अक्षरब्रह्मयोग
9. राजविद्याराजगुह्ययोग
10. विभूतियोग
11. विश्वरूपदर्शनयोग
12. भक्तियोग
13. क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग
14. गुणत्रयविभागयोग
15. पुरुषोत्तमयोग
16. दैवासुरसम्पद् विभागयोग
17. श्रद्धात्रयविभागयोग
18. मोक्षसंन्यासयोग

योगी

भोगी

रोगी

योगी और भोगी में अंतर

एक योगी पुरुष का जीवन भी एक सामान्य मनुष्य जैसा ही होता है, पर वह प्रत्येक पल जागृत रहता है कि वह एक पवित्र आत्मा है। वह वस्तुओं का उपभोग भी करता है तो भी परमात्मा से योग करके करता है। और सामान्य मनुष्य परमात्मा से योग भी करता है तो भी, उस समय भी उसके भीतर सांसारिक भोग के विचार चलते ही रहते हैं। यानी भोगी योग भी करता है तो भी भोग ही करता है! और मैं का अहंकार होता ही है। **मैं का अहंकार मनुष्य को शरीरभाव से जोड़े ही रखता है।**

योगी भोग भी करता है तो भी योग के साथ करता है और भोगी योग भी करता है तो भी भोग के साथ ही करता है। योगी और भोगी को पहचानने के लिए आत्मज्ञान आवश्यक है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

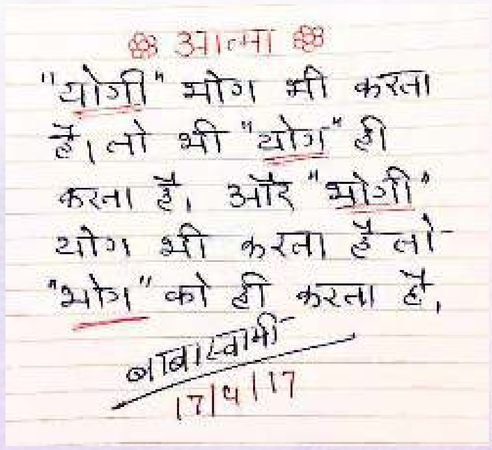

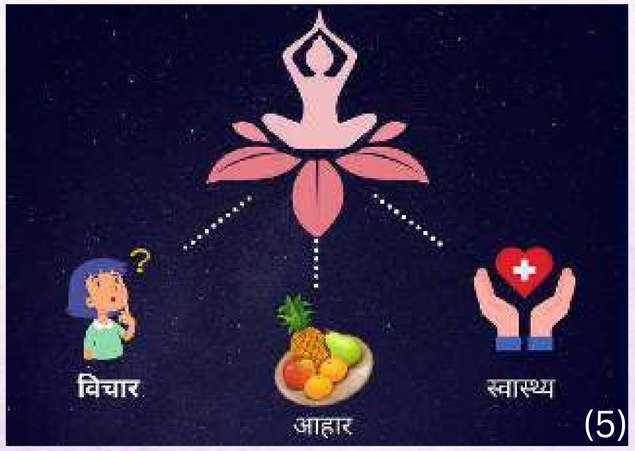

योग का उद्देश्य

अभी समाज में केवल योग के एक अंग शरीर के स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया जा रहा है। यह केवल योग की प्रथम पादान ही है। केवल शरीर सुंदर, सुडौल बनाने के लिए ही योग करना मनुष्य के हित में नहीं है। क्योंकि ऐसा करने पर हम शरीर को ही प्रधानता दे रहे हैं, जो योग के एकदम विरुद्ध है। योग में आत्मा को प्रधानता है। साधारणत: योग का उपयोग शरीर सौष्ठव बढ़ाने में या मनोदैहिक विकारों को दूर करने के लिए किया जाता है। वास्तव में शारीरिक-मानसिक लाभ तो बाय-प्रोडक्ट हैं। **योगासन-प्राणायाम करने से शरीर स्वस्थ, लचीला और संवेदनशील बनता है। लेकिन वास्तव में यह योग की पूर्व तैयारीभर है।**

शरीरभाव से उठकर आत्मभाव को जागृत करना ही सही अर्थ में अपने-आपको जानना है। जो योग से संभव है। आजके भौतिक विश्व में मनुष्य सदैव शरीर की ही सुख-सुविधाओं को ही प्रधानता देता है। जिससे वह आत्मा के अस्तित्व को ही जैसे भूल गया है। जो स्वयं के तथा समाज के असंतुलन का मूल कारण है। संतुलन से हमारा आशय आहार, स्वास्थ्य, विचारों तथा उसके द्वारा किए गए कार्य के संतुलन से है। आत्मभाव बढ़ाने से से जीवन ही संतुलित बनता है। आत्मभाव बढ़ने से मनुष्य के आचार, विचार एवं व्यवहार सुनियंत्रित हो जाते हैं। मनुष्य को संतुलित करने के लिए मनुष्य ने कुछ कायदे-कानून बनाए हैं, पर वे पर्याप्त नहीं है। क्योंकि मनुष्य ने ही उसे बनाया है और वही उसमें से रास्ता निकाल लेता है। मनुष्य को संतुलित रख सकता है तो केवल वह स्वयं। योग का मूल उद्देश्य ही आत्मभाव बढ़ाना है।

सभी धर्मों (उपासना पद्धतियों) में उचित-अनुचित का मार्गदर्शन दिया है, मगर सिर्फ मार्गदर्शन पर्याप्त सिद्ध नहीं हो रहा है... जरूरत है भीतरी बदलाव की।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

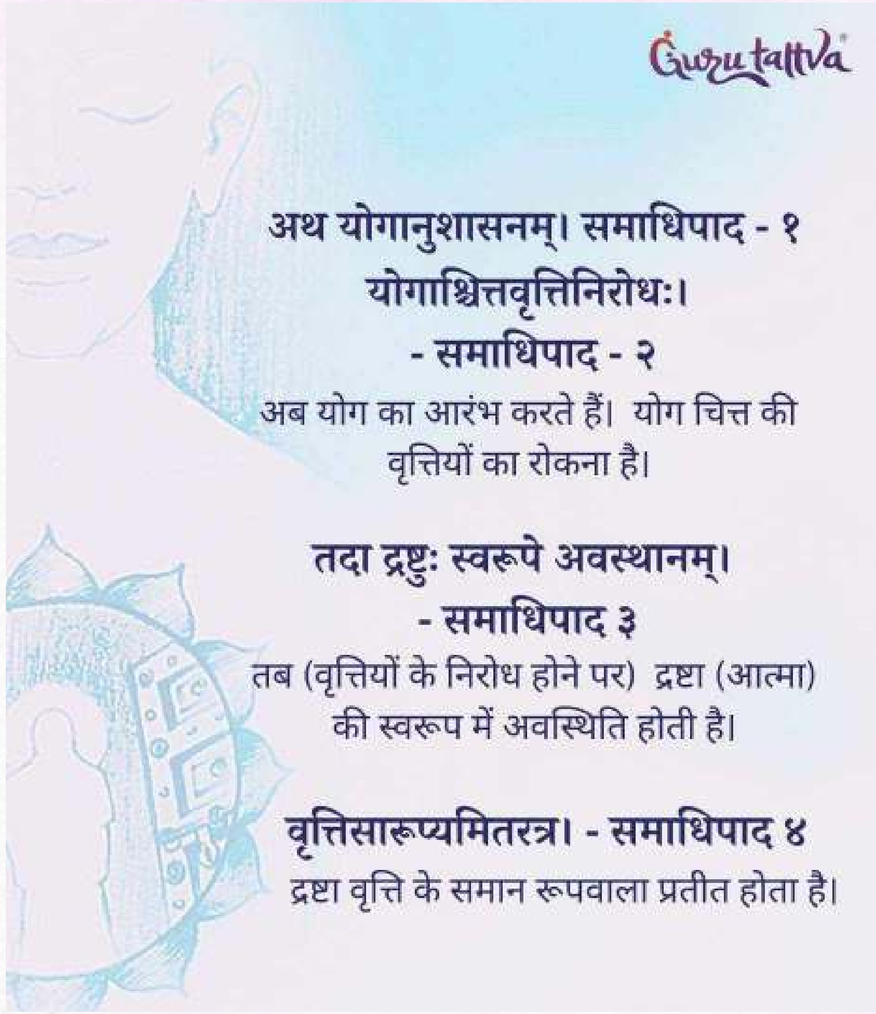

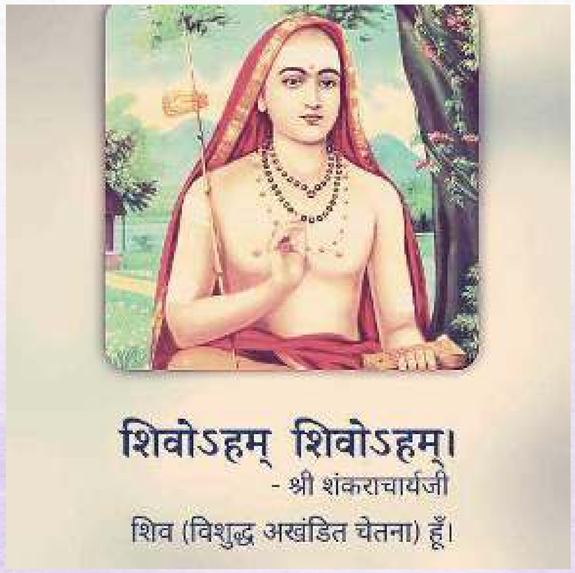

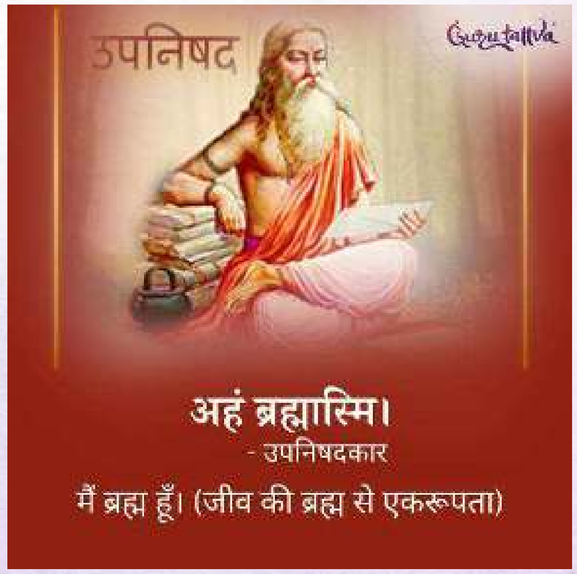

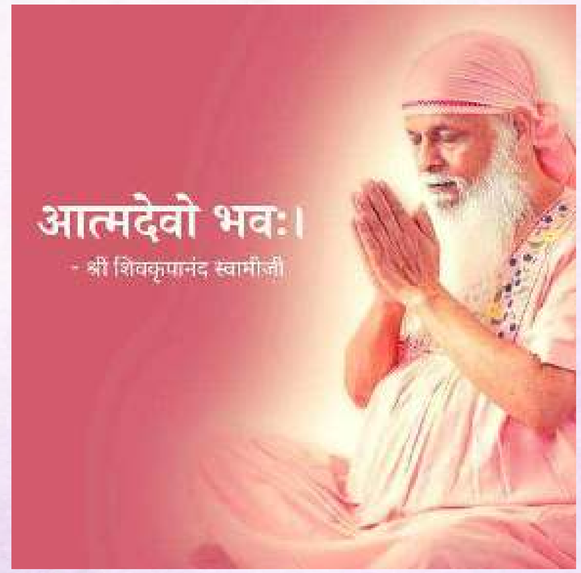

शरीरभाव और आत्मभाव

**आत्मा न किसी जाति की है, न किसी धर्म की है,
आत्मा न किसी देश की है, आत्मा न किसी रंग की है,
आत्मा न किसी लिंग की है। इन सबसे परे आत्मा है।**

शरीरभाव से संबंधित बातें:
अहंकार, अपेक्षा,
व्यसन, स्वार्थ,
लोभ, मोह,
आसक्ति, गुस्सा,
जूठ बोलना, विचार,
घृणा, द्वेष,
कामवासना,
समस्या का एहसास एवं चिंता

आत्मभाव से संबंधित बातें:
सत्य का अनुसरण,
सहनशीलता,
निर्भीक होना,
आत्मशांति,
संतोष,
भाव, निजानंद,
सृजनात्मकता, सद्भावना,
परम चैतन्य से एकरूप होना,
प्रार्थना, क्षमा, अहिंसा, प्रेम

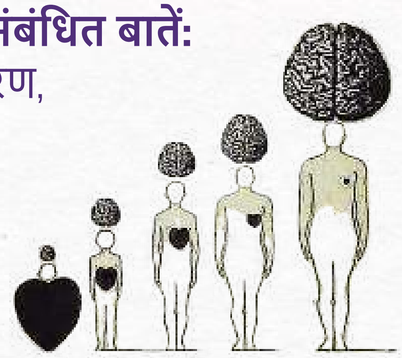

Gurutattva

शरीर की प्रसन्नता तो क्षणभर की होती है; सदैव, जीवनभर याद रहे, ऐसी नहीं होती है। लेकिन आत्मा की प्रसन्नता सदैव याद रहती है, उस प्रसन्नता की खुशबू जीवनभर ली जा सकती है।

परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत :हिमालय का समर्पण योग - भाग ४ पृष्ठ : 146

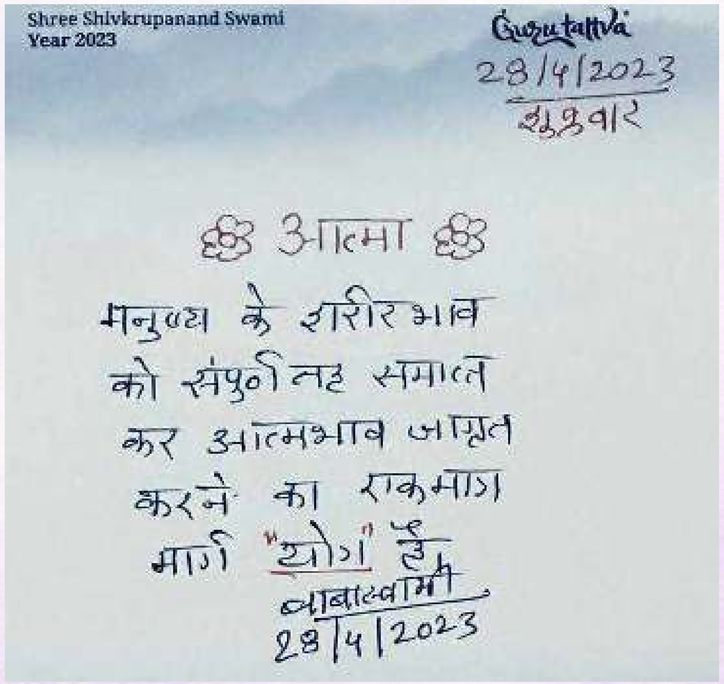

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

1. अहोभाव का भाव निर्माण होना:

हमारे लिए कोई कुछ भी करे तो हमारा दिल एक अहोभाव से भर जाता है। सामने वाला अपनी ओर एक कदम भी चले तो हमें उसकी ओर दस कदम चलने की इच्छा होती है। कोई हमारे लिए थोड़ा सा भी कुछ करे, हमें उसके कुछ करने की इच्छा होती है और केवल इच्छा नहीं होती, हम करते भी हैं। जब तक नहीं करते हैं, बेचैनी-सी लगती है। सदैव दूसरों के लिए कुछ-न-कुछ करने का ही मन करता है। और कुछ नहीं कर सके तो सदैव सबका भला हो यह भाव से 'प्रार्थना' करने से मन को अच्छा लगता है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 55

(क्रमशः)

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

2. सद्गुरु का महत्त्व समझना :

...हमें सद्गुरु का महत्त्व समझ में आने पर समझो हमें कभी उसका सान्निध्य मिला तो बेकार के प्रश्न पूछकर या बेकार की अनावश्यक बातें करके हम उसके जीवन का 'बहुमूल्य क्षण' नहीं गवाँते हैं। हम उसके मिले सान्निध्य का लाभ अपनी अंतर्मुखी स्थिति करने में ही उपयोग करते हैं। गुरुसान्निध्य का सबसे अच्छा उपयोग अंतर्मुखी करने के लिए ही करना चाहिए।

अब आपने का उपयोग तो अपने-आपको देखने के लिए ही किया जाता है ना! बस, ऐसा ही सद्गुरु भी 'आपना' ही है। इसमें अपने आत्मा को देखो और आप देख सकते हो, अंतर्मुख होने पर आपको आपके दोष दिखना प्रारंभ होंगे।

(क्रमशः)

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 56

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

3. सदैव वर्तमान में रहना :

हमारा चित्त बार-बार अनुभूति पर जाता है तो स्वाभाविक ही हम वर्तमानकाल में रहने लगते हैं। और कुछ साल तक यह अभ्यास होने पर हमारा वर्तमानकाल में ही रहना 'स्वभाव' ही बन जाता है।

क्षणिक रूप से कभी भूतकाल के या भविष्यकाल का कोई विचार भी आया तो भी जिस प्रकार से पानी का बुलबुला बरसात (बरसात) के दिनों में हम देखते हैं - वह क्षण में तैयार होता है और क्षण में समाप्त हो जाता है, बिलकुल ठीक ऐसा ही हमारे विचार की अवस्था भी सदैव क्षणिक होती है और ऐसे क्षणिक विचार का हमारे चित्त की शुद्धता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(क्रमशः)

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 57

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

4. क्षमाभाव का निर्माण होना :

'क्षमा' वह झाड़ू है जो भूतकाल के जमा कचरे को साफ करने का कार्य करती है। जहाँ एक ओर वह भूतकाल के कचरे को दूर कर चित्त को शुद्ध करती है, वहीं दूसरी ओर जो भूतकाल के कचरे को लेकर हम जीवन जीते हैं, उस कचरे के अनावश्यक 'भार' को भी 'कम' करती है।

क्षमा साथ-साथ चित्त को पवित्र और सशक्त भी करती है, क्योंकि मैं का 'अहंकार' जब किए बिना क्षमा करना संभव ही नहीं है। अहंकारी व्यक्ति कभी भी किसी को क्षमा कर ही नहीं सकता है। क्षमा आत्मा का विशेष गुण है।

(क्रमशः)

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 58

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

5. करुणाभाव:

आत्मा का यह एक बड़ा ही अच्छा गुण है। आत्मा के शुद्धता के साथ-साथ करुणा का गुण भी विकसित होता है। कुछ समय के बाद तो करुणा करना स्वभाव ही हो जाता है।

इसमें हमें 'दया' और 'करुणा' में भी अंतर को समझना आवश्यक है। दया शरीर से की जाती है। दया करना शरीर से होता है। अहंकारी व्यक्ति भी दया कर सकता है। लेकिन अहंकारी व्यक्ति करुणा नहीं कर सकता है। करुणा का संबंध है विशुद्ध आत्मभाव से होता है। आत्मा शाश्वत व शुद्ध हुए बिना किसी से करुणा करना संभव नहीं है।

(क्रमशः)

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 59

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

6. संपूर्ण समाधान की प्राप्ति :

मनुष्य का सबसे बड़ा आत्मसमाधान है - 'परमात्मा' की प्राप्ति। वह प्राप्ति जिसे हो गई, वह फिर अपने ही मस्ती में रहता है। फिर आवश्यकताओं का भी महत्व नहीं रह जाता। कुछ मिला तो भी ठीक, नहीं मिला तो भी ठीक वाला स्वभाव ही हो जाता है। क्योंकि उस मनुष्य को समाधान उसकी आत्मा के सान्निध्य में ही मिलने लग जाता है। वह आत्मसमाधानी हो जाता है और वह समाधान पाने के लिए किसी व्यक्ति या वस्तु पर निर्भर नहीं होता, आत्मनिर्भर हो जाता है।

(क्रमशः)

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 60

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

7. सुरक्षितता का अनुभव होना:

अपने-आपको सदैव असुरक्षित समझना, सदैव मेरा कुछ बुरा होगा यह सोचना अत्याधिक शरीरभाव के कारण ही होता है। आज सारे मानवजाति की ही यह बहुत बड़ी समस्या है, क्योंकि आज मनुष्यों में 'शरीरभाव' बहुत ही अधिक हो गया है।

कई बार तो यह असुरक्षितता की भावना ही जीवन को असुरक्षित स्थिति में ले आती है। आपके भीतर का जैसे-जैसे आत्मभाव विकसित होता है, आपको इन नकारात्मक विचारों से मुक्ति मिल जाती है।

(क्रमशः)

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 01

शरीरभाव समाप्त होने पर आत्मभाव जागृत हो जाता है और आत्मा के गुण विकसित होने लगते हैं।

आत्मा के प्रमुख गुण इस प्रकार से समझे जा सकते हैं:

8. विशुद्ध प्रेम का भाव निर्माण होना :

आपमें आत्मभाव विकसित हो जाने पर सभी को प्रेम करना आपका स्वभाव हो जाता है। प्रेम तो आत्मारूपी फूल की सुगंध है। वह तो आत्मा का फूल जब जीवन में खिलता है तो प्रेम की 'सुगंध' तो निर्माण होना स्वाभाविक ही है। और हम में आत्मभाव तो तभी विकसित हो सकता है जब हम नियमितरूप से ध्यान के साथ आत्मा के सान्निध्य में सतत रहें। यह सब स्थिति शरीर के प्रयास से कभी पायी नहीं जा सकती है। अपने-आपको रिक्त करने पर स्वयं ही हो जाती है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 63

योग एक अनुभूति का ज्ञान है

'योग एक अनुभूति का ज्ञान है और अनुभूति आत्मा को होती है। और आत्मा की कोई जाति, धर्म, देश, भाषा, रंग, लिंग नहीं होता है। इसीलिए योग भी इन सभी सीमाओं से परे है।

किसी भी पुस्तक के, किसी भी पवित्र तीर्थक्षेत्र के चैतन्य को ग्रहण करने के लिए आत्मज्ञान आवश्यक है। तभी आप वहाँ के चैतन्य को ग्रहण कर सकेंगे। ध्यानयोग अनुभूति का विज्ञान है। आप स्वयं सीखो और अपने जीवन में अच्छी पुस्तकों का, अच्छे स्थानों का आनंद प्राप्त करो।

मोक्ष ध्यान की एक उच्च अवस्था है। यह मनुष्य को अपने जीवनकाल में ही प्राप्त करनी होती है। इसीलिए कहा गया है, जब तक देह है, तब तक साधन है। साधन है, तब तक ध्यान किया जा सकता है।

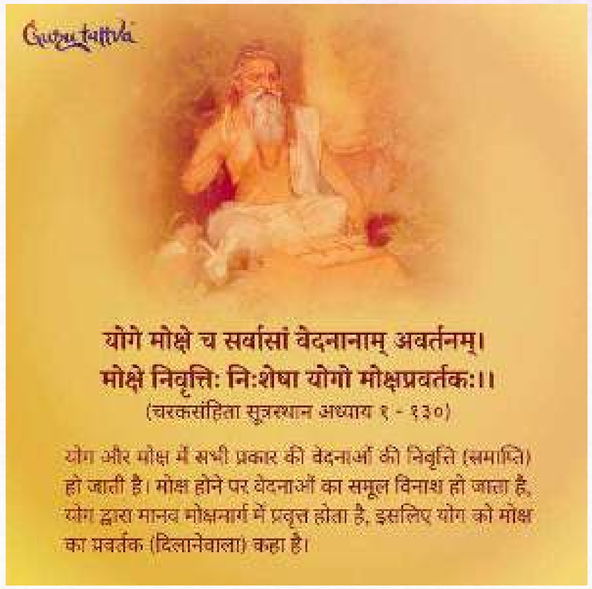

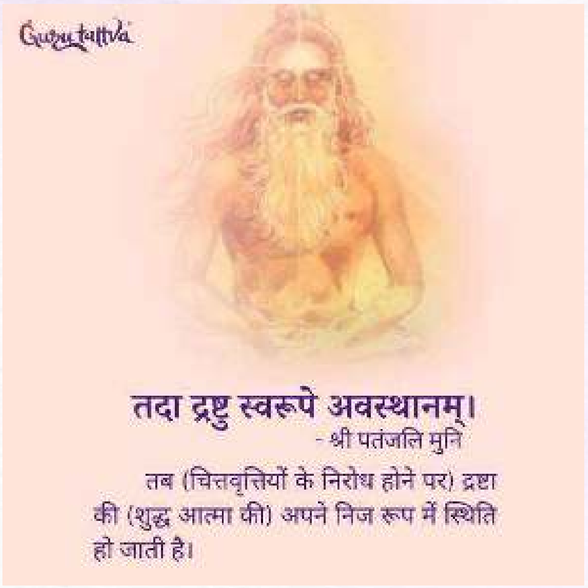

मोक्ष की अवस्था प्राप्त होने पर साधक में निम्नलिखित बदलाव अनुभव होते हैं –

शारीरिक स्तर पर अनुभव :

1.मृत्यु के भय से मुक्ति मिलती है।
2.शारीरिक व्याधियों की तकलीफों से मुक्ति
3.अहंकार से मुक्ति
4.लोभ से मुक्ति
5.राग से मुक्ति
6.द्वेष से मुक्ति
7.व्यसन से मुक्ति
8.कामवासना से मुक्ति
9.लिंगभेद से मुक्ति
10.स्वाद से मुक्ति

मानसिक स्तर पर अनुभव :

1.पानी के बबुले जैसे क्षणिक विचार
2.निर्विचारिता की स्थिति
3.क्षमाभाव सभी के प्रति रहना
4.सभी के प्रति सद्भावना का भाव होना
अपने जीवन से आसक्ति समाप्त होना

आर्थिक स्तर पर अनुभव :

1.आवश्यकता के पूर्व प्राप्ति होना।
2.कुछ पाने की इच्छा न रहना
3.समाधान का भाव सदैव रहना

आध्यात्मिक स्तर पर अनुभव :

1.अलौकिक समाधान की प्राप्ति
2.भीतर की खोज प्रारंभ होना
3.परमात्मामय होने का अनुभव
4.आत्मिक शांति का अनुभव
5.चित्त सदैव सहस्रार पर ही रहना
6.शून्य स्थिति में रहना
7.दिव्य सुगंध का अनुभव
8.चैतन्य की अनुभूति
9.आभामंडल का निर्माण होना
10.मोक्ष की स्थिति प्राप्त होना

(परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी द्वारा लिखित संदेश 'मोक्ष की ओर' स्रोत: मधुचैतन्य 2012)

योग

"शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य भी आवश्यक है। W.H.O. की स्वास्थ्य की परिभाषा में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी जोड़ा गया है। वास्तव में, 'समग्र योग' में तो शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी शामिल है। इतना विशाल क्षेत्र 'योग' का होता है! और केवल शरीर के स्वास्थ्य के लिए 'योग' करना योग्य प्रतीत नहीं होता है।"

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : समग्र योग पुस्तिका

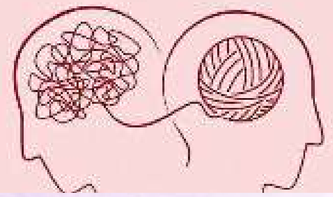

यौगिक विज्ञान के कुछ तत्त्व

1. शरीर

शरीरभाव को कम करने के लिए शरीर को ही कम करना ठीक प्रतीत नहीं होता। शरीरभाव को कम करने का मार्ग समर्पण ध्यानयोग में यह है कि शरीरभाव के सामने आत्मभाव की लंबी लकीर खेंच (खींच) दो तो शरीरभाव वैसे ही छोटा हो जाएगा। बिना शरीर के आध्यात्मिक प्रगति वैसे भी संभव नहीं है। शरीर तो साधन है, वह नहीं होगा तो आगे की प्रगति कैसे होगी? **योग केवल शरीर पर नियंत्रण पाने की नहीं, आत्मा के नियंत्रण में जाने की यात्रा है।** 'मन' पर नियंत्रण तो उस मार्ग का एक पड़ावभर है।

शरीर वाहन है, आत्मा ड्राइवर (वाहनचालक) है। बिना वाहन के ड्राइवर आगे नहीं बढ़ सकता है। लेकिन यह भी सच है बिना ड्राइवर के गाड़ी भी आगे नहीं बढ़ सकती है। इसलिए किसको किसकी जरूरत है, यह कभी जाना नहीं जा सकता है। दोनों अपने-अपने स्थान पर योग्य हैं और दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए अपनी मंजिल प्राप्त करने के लिए हमें दोनों को समझना आवश्यक है। दोनों का तालमेल और दोनों का संतुलन अगर हम रख पाते हैं, तो ही मंजिल तक पहुँच सकते हैं।

जो हमारा शरीर है, साधनरूपी वाहन है। जिस प्रकार से गाड़ी का मेंटेनेन्स, रख-रखाव जरूरी होता है, ठीक उसी प्रकार से, शरीर का रख-रखाव भी अत्यंत जरूरी है। कुछ धर्मों में शरीर के रखरखाव को, शरीर के महत्त्व को सिरे से ही नकार दिया गया है और आत्मा पर ही जोर दिया गया है। यह भी योग्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि शरीर की आवश्यकता ही आत्मा को नहीं होती तो वह आत्मा शरीर को धारण ही क्यों करता? आत्मा ने भी शरीर के महत्त्व को समझा है और इसीलिए आत्मा ने शरीर धारण किया है। और कई आत्माएँ उपयुक्त शरीर न मिलने के कारण, अनुरूप शरीर न मिलने के कारण अटकी पड़ी हैं, शरीर के लिए प्रतीक्षारत हैं।

जब आत्मा शरीर की प्रतीक्षा करती है, तो शरीर व्यर्थ या महत्त्वहीन कैसे हो सकता है? आत्मा ने जिस शरीर को बड़ी प्रतीक्षा के बाद पाया है, उस शरीर की देखभाल करनी ही चाहिए। यह हमारा कर्तव्य नहीं, आत्मा की आवश्यकता है। इसलिए शरीर की ओर ध्यान देना ही चाहिए। शरीर को स्वस्थ, पवित्र, विचाररहित, प्राकृतिक रखना ही चाहिए। स्वस्थ शरीर के बिना मोक्षप्राप्ति संभव नहीं है। एक खटारा गाड़ी जो चल ही नहीं सकती, उस गाड़ी का ड्राइवर क्या कर सकता है? ड्राइवर कितना भी कुशल हो, गाड़ी खराब होने पर कोई काम का नहीं है। एक कुशल ड्राइवर गाड़ी के बिना स्वयं कुछ नहीं कर सकता है। **शरीर स्वस्थ नहीं है तो आत्मारूपी ड्राइवर भी बेकार है।** वह भी कोई काम का नहीं है।

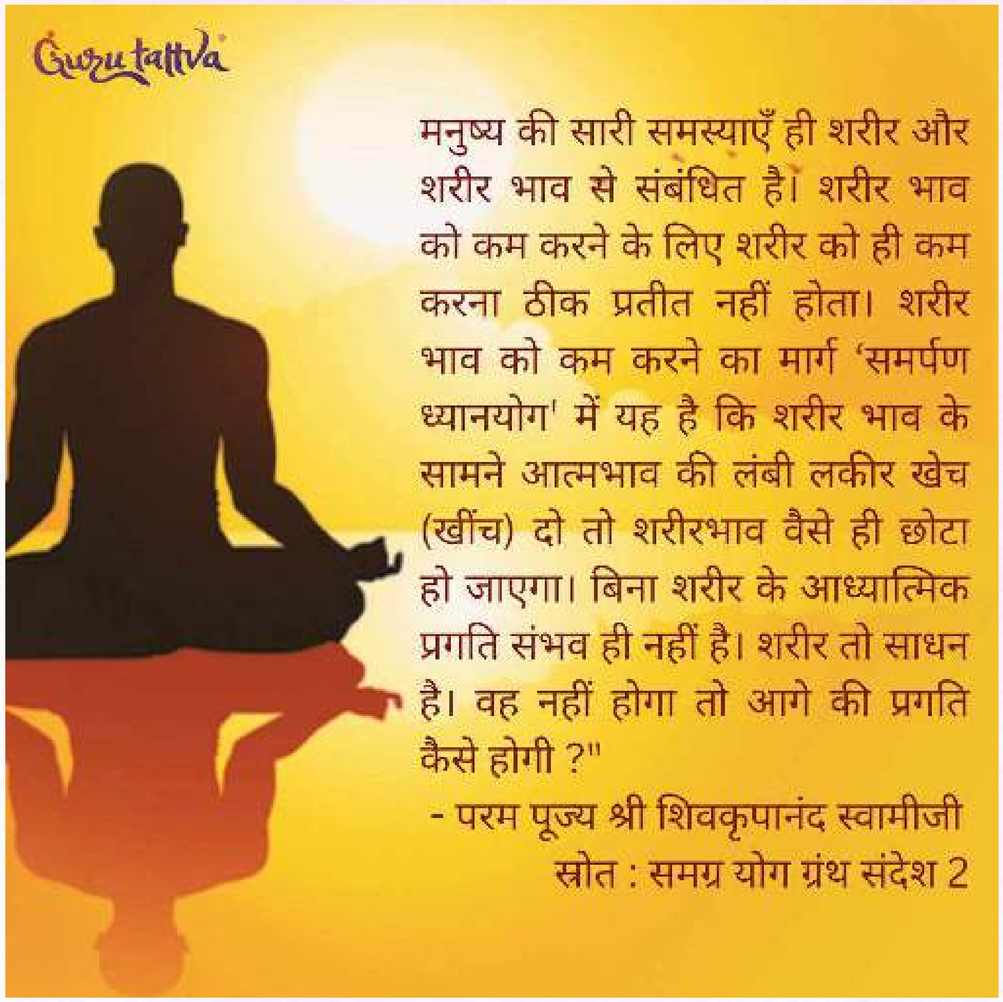

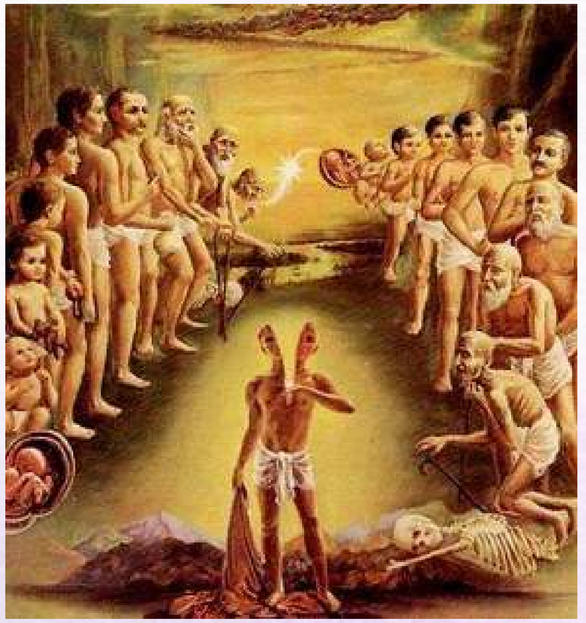

जिस प्रकार गाड़ी महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार से ड्राइवर भी महत्त्वपूर्ण है। बिना ड्राइवर के गाड़ी दौड़ नहीं सकती। गाड़ी न चलने पर अटाला हो जाती है, गाड़ी भंगार में चली जाती है। ठीक इसी प्रकार, जब शरीर में आत्मा ही नहीं है, तो वह शरीर तो मुर्दा है और मुर्दा क्या काम का? थोड़े समय पश्चात् तो वह मुर्दा बदबू देने लग जाएगा। कितना ही सुंदर शरीर हो, कितने ही प्रिय जन का शरीर हो, मुर्दे के साथ कोई रहना पसंद नहीं करता।

इसीलिए शरीर की कीमत केवल आत्मा के कारण है। आत्मा चले जाने पर शरीर को नष्ट कर दिया जाता है। यानी बिना आत्मा के शरीर बेकार है। कई धर्मों में शरीर को अधिक महत्त्व दिया गया है। शरीर के लिए दुनियाभर के नियम बनाए गए हैं। शरीर की पवित्रता पर अधिक जोर दिया गया है। यह भी अति है।

हमें शरीर और आत्मा दोनों को समान महत्त्व देना चाहिए, दोनों को समान विकसित करना चाहिए क्योंकि एक स्वस्थ व पवित्र शरीर में एक स्वच्छ और पवित्र आत्मा वास करती है। हमें शरीर के विकारों से बचने के लिए अपने-आप को आत्मा समझना चाहिए।

हमें शरीर में रहना है, पर आत्मा बनकर रहना है। ऐसा बनकर अगर हम शरीर में रह सके, तो हम इस शरीर के माध्यम से अपने जीवन में अपनी आत्मा को मोक्ष प्राप्ति तक अवश्य पहुँचा पाएँगे। और प्रत्येक आत्मा का अंतिम लक्ष्य मोक्ष पाना है। उसी के लिए आत्मा ने यह शरीर का आवरण ओढ़ा हुआ है, यह बात हमें सदैव याद रखनी है।

सामूहिकता

अब सारे झगड़ों की जड़ यह शरीर ही है। और शरीर को ही रागाप्त करना है तो हमें ऐसी रागूहिकता की आवश्यकता है जो शरीर तो है लेकिन 'शरीरभाव' नहीं है। प्रत्येक मनुष्य तो थोड़े समय ध्यान के माध्यम से शरीरभाव रहित हो सकता है। लेकिन हमें एक ऐसा मनुष्य नहीं, ऐसे मनुष्यों की सामूहिकता चाहिए और ऐसी सानूहिकता एक ही शरीर में मिल सकती है, वह है, 'सद्गुरु'।

वह एक शरीर है लेकिन संपूर्ण शरीरभाव विहीन है। इसलिए क्योंकि वह 'अंतर्मुखी' है। उसका चित्त बाहर नहीं, सदैव भीतर ही रहता है। इसलिए उस पर चित्त रखनेवालों का चित्त भी कुछ समय के लिए क्यों न हो, भीतर चला जाता है।

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : पवित्र आत्मा ग्रंथ पृष्ठ : २६

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।।
(चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय 1 - 46)

सत्त्व (मन-चित्त), आत्मा, शरीर ये तीनों त्रिदण्ड (लकड़ी द्वारा निर्मित तिपाई) के समान हैं। इन तीनों के संयोग से लोक (जीवात्मा) की स्थिति है। इसी में सबकुछ प्रतिष्ठित है। अर्थात् ये तीन ही आधार स्तम्भ हैं।

धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलम् उत्तमम्।
- चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय १ - ४६

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का आरोग्य ही प्रधान कारण है।

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।
- कवि कालिदास

अर्थात् शरीर ही धर्म का पहला और उत्तम साधन है व शरीर ही धर्म को जानने का माध्यम है।

2. आत्मा

हम जब अपनी माँ के कोख में रहते हैं, तभी तीन-चार महीने बाद गर्भ में आत्मा और कुंडलिनी शक्ति का प्रवेश होता है और तभी से यह आत्मा हमें सदैव मार्गदर्शन करते रहती है। **वास्तव में यह आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है।** इसलिए सही अर्थ में परमात्मा ही इस आत्मा के रूप में हम सभी के भीतर स्थापित रहता है। लेकिन हम इस परमात्मा को जीवनभर बाहर खोजते रहते हैं। लेकिन यह हमारे भीतर में सुप्त अवस्था में रहता है। जब हम इस बात का एहसास करते हैं, तब उसका एहसास समूचे शरीर में होने लगता है।

सामान्यतः जीवनभर आत्मा पर नियंत्रण शरीर का होता है। शरीर की तुलना में आत्मा का स्वरूप बहुत छोटा-सा ही है। और शरीर में आत्मा बेचारा सामान्यतः दुबका-सा ही रहता है। कभी-कभी अति होने पर वह एकांत में विरोध भी प्रगट करता है। पर उसके विरोध की शरीर कभी परवा ही नहीं करता है। विशेष रूप से कोई गलत कार्य प्रथम बार करते समय आत्मा अपना विरोध अवश्य बताता है। पर शरीर उसकी बात सुनता ही नहीं है, क्योंकि मनुष्य अपने-आपको शरीर ही समझता है।

साधारणतः देखा गया है कि हम जो मानते हैं, वैसे ही हम हो जाते हैं। हम अगर अपने-आपको शरीर समझेंगे तो शरीर की प्रधानता बढ़ जाएगी और आत्मा शरीर के नियंत्रण में हो जाएगी। और अगर हम अपने-आपको आत्मा समझेंगे तो आत्मा के नियंत्रण में शरीर चला जाएगा। **हम अपने-आपको जो समझेंगे, हम वैसे ही बनेंगे।** हम अपने-आपको शरीर समझते हैं तो आध्यात्मिक प्रगति का विचार ही हमें त्याग देना चाहिए। क्योंकि जब तक हम अपने भीतर नहीं झाँकते, तब तक हमें अपने दोष दिखाई ही नहीं देंगे। और भौतिक सुविधाएँ शरीर को कितनी भी दो, वह उन सुविधाओं का गुलाम होता ही चला जाएगा और शरीर का नाश होता चला जाएगा। शरीर को सुविधाएँ कम ही प्रतीत होगी।

आत्मा की अनुभूति शरीर के द्वारा हमें मालूम होती है, पर वह होती है आत्मा के माध्यम से। चैतन्य के वे स्पंदन हमें शरीर पर मालूम होते हैं।

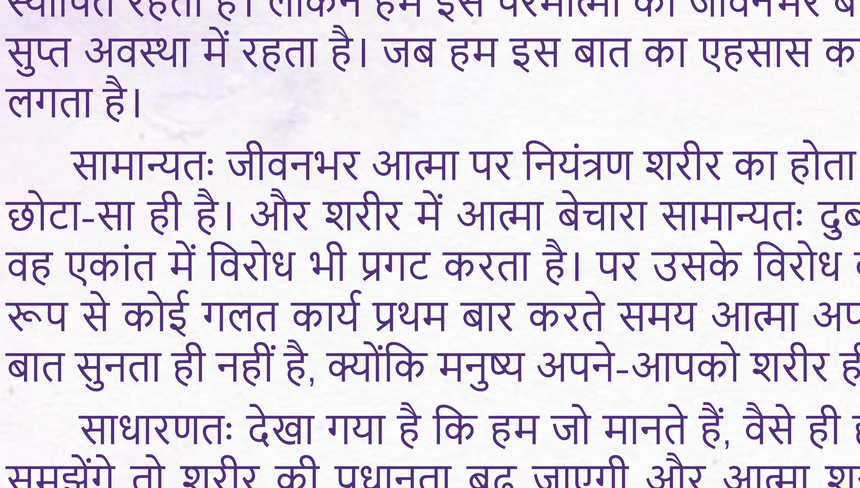

Guru tattva

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही इन प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है।

(संदर्भ : श्रीमद् भगवद् गीता
अध्याय १५ श्लोक ७)

Guru tattva

अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥

वह आत्मा 'है' इस प्रकार ही उपलब्ध किया जाना चाहिये तथा उसे तत्त्वभाव से भी जानना चाहिये।

इन दोनों प्रकारकी उपलब्धियों में से जिसे 'है' इस प्रकार की उपलब्धि हो गयी है, तत्त्वभाव' उसके अभिमुख हो जाता है ॥

(संदर्भ : कठोपनिषद अध्याय २ श्लोक १३)

- हमें प्रथम अपने-आपको आत्मा समझना पड़ेगा, तभी हम आत्मा की अनुभूति को अनुभव करेंगे।
- आत्मा की अनुभूति का एहसास करेंगे। **'मैं एक पवित्र आत्मा हूँ' यह मानना हमारा ध्यान आत्मा की ओर लेकर जाएगा।** आत्मा पर ध्यान जाएगा तो ही अनुभूति का बोध होगा।
- और अनुभूति पर ध्यान जाएगा तो शरीर को भी प्रसन्नता महसूस होगी, शांति महसूस होगी, तनावरहित लगेगा। और धीरे-धीरे इस क्रिया में शरीर भी अपना योगदान देना प्रारंभ कर देगा।
- और जैसे-जैसे इस क्रिया में शरीर सहभागी होगा, वैसे-वैसे मनुष्य का ध्यान शरीर के उपर से हटेगा। और जब शरीर पर ही ध्यान नहीं है तो शरीर की समस्याओं पर ध्यान कम होना प्रारंभ होगा।
- **और जब समस्याओं पर मनुष्य अपना चित्त नहीं डालेगा तो समस्याओं का आना स्वयं ही बंद हो जाएगा।**
- समस्यारूपी काँटे के झाड़ पर जब हम चित्त रूपी खाद डालते हैं तभी काँटे का झाड़ बढ़ता है।

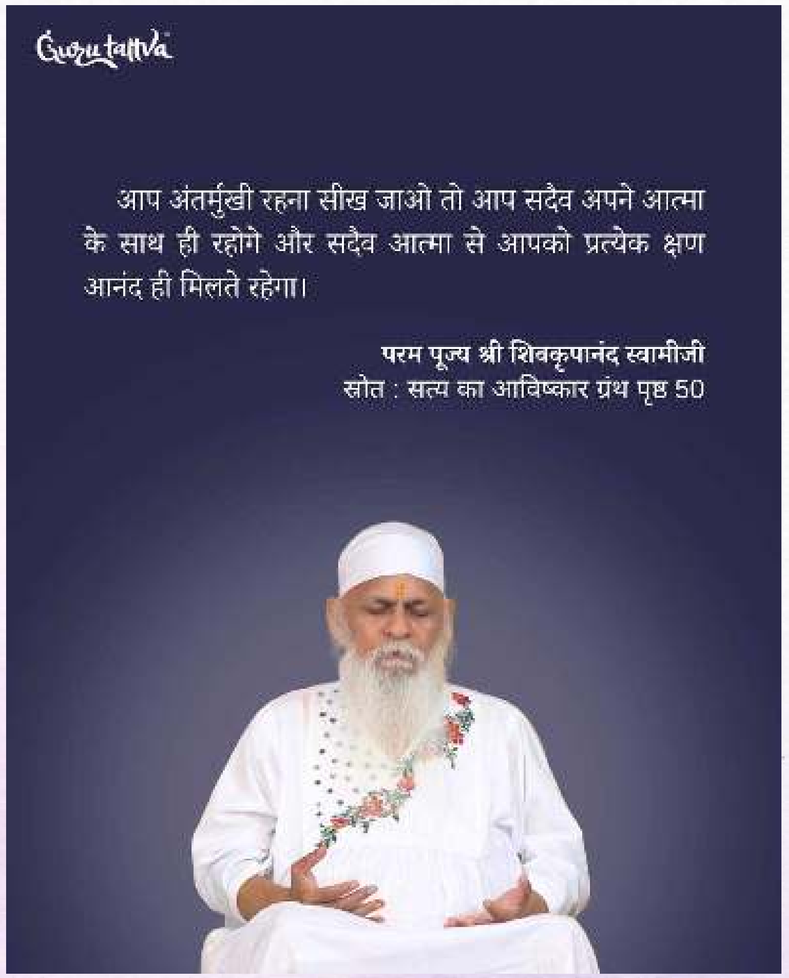

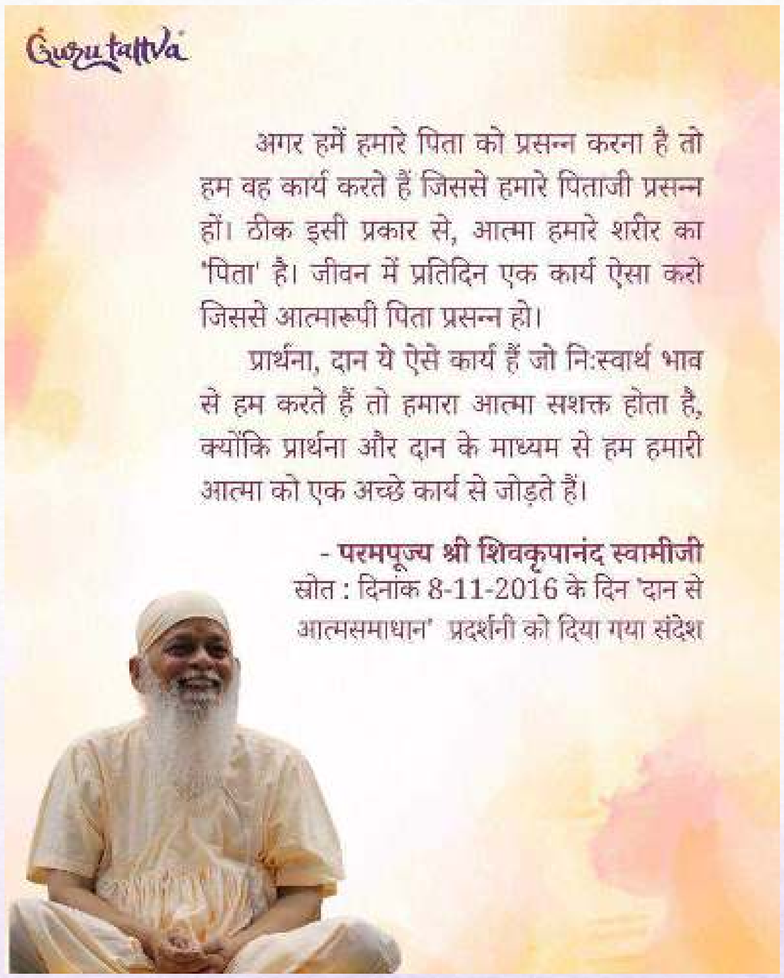

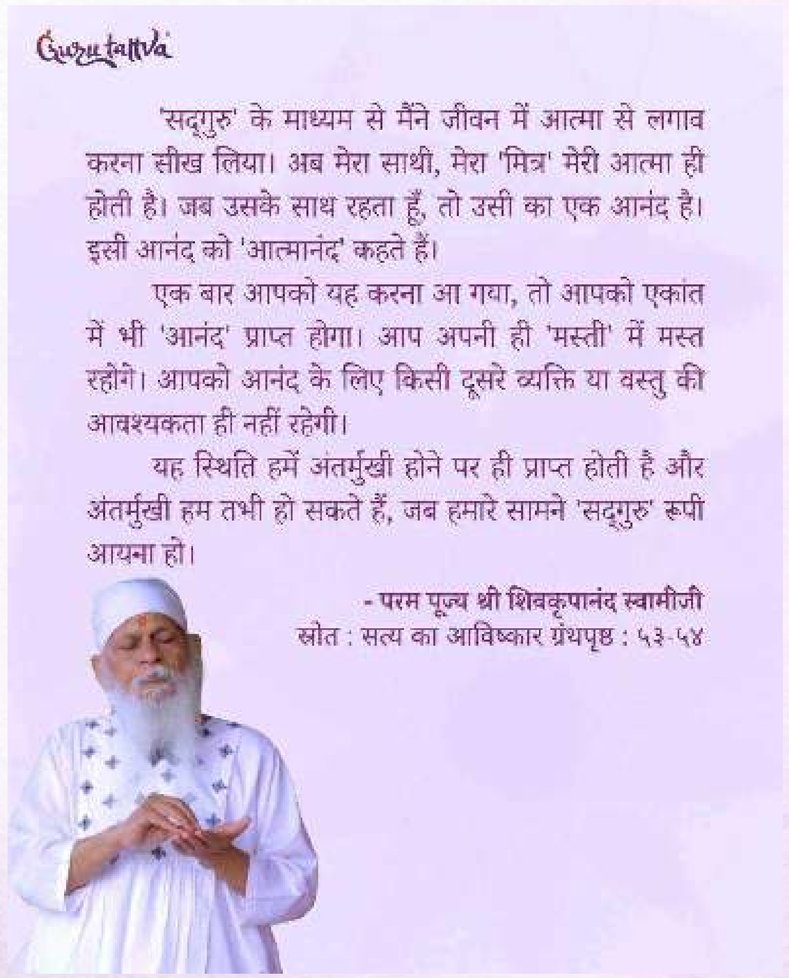

3. आभामंडल

- तंदुरुस्ती, व्यक्तित्व, मानसिक स्थिति, परिस्थिति सबकुछ व्यक्ति के स्वयं के आभामंडल पर निर्भर है और **आभामंडल व्यक्ति के स्वयं के विचारों से प्रभावित होता है।**
- व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति के अनुसार आभा/सूक्ष्म शरीर के रंग बदलते हैं।
- **ध्यान करने से व्यक्ति का आभामंडल शुद्ध व सशक्त होता है।**

745
9.12.17
शनिवार

आत्मा

कोई किसी की सुरक्षा नहीं कर सकता। प्रत्येक मे "ओरा" बना कर अपनी सुरक्षा करना होगी।

बाबास्वामी
9.12.17

742
6.12.17
बुधवार

आत्मा

आने वाले समय मे ही ओरा की आवश्यकता पडने वाली होगी इसी लीये "ओरा" पर हिमालय के गुरुओ ने ध्यान दिया है।

बाबास्वामी
6.12.17

आभामंडल

जिस प्रकार से व्यक्ति का ऑरा होता है, ठीक इसी प्रकार से घर का, फॅक्ट्री का, दुकान का, ऑफिस का भी आभामंडल होता है। जिस प्रकार के व्यक्ति वहाँ रहते हैं, उसी प्रकार के अनुसार आभामंडल अच्छा या बुरा बनता है। किसी अच्छे आभामंडल वाले स्थान पर कितना समय चला गया, पता भी नहीं चलता है। खराब आभामंडल वाले स्थान पर समय जल्दी कटता भी नहीं है। मनुष्य का समय अच्छा या बुरा नहीं होता, मनुष्य का आभामंडल अच्छा या बुरा होता है। इसीलिए जीवन का अच्छा समय कब चला गया, पता भी नहीं चलता है।

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : आध्यात्मिक सत्य ग्रंथ पृष्ठ : १३३

12.12.17
मंगलवार

आत्मा

"आत्मा" मानो दिया है, तो ओरा उसका प्रकाश है।

बाबास्वामी
12.12.17

27.11.15

ओरा

"छाया" तो अंधेरे में साथ छोड़ देती है, "ओरा" तो अंधेरे में भी आप के साथ होना है।

बाबास्वामी
27/11/15

26.11.15

ओरा

"ओरा" एक "सशक्त" सुरक्षा कवच है। जो सदैव आप के साथ साथ चलता है।

बाबास्वामी
26.11.15

27.11.17
सोमवार

आत्मा

आभामंडल से आप अपना "निजी विश्व" बना सकते हैं, हो सकता है, वह 15 या 20 फीट का ही हो।

बाबास्वामी
27.11.17

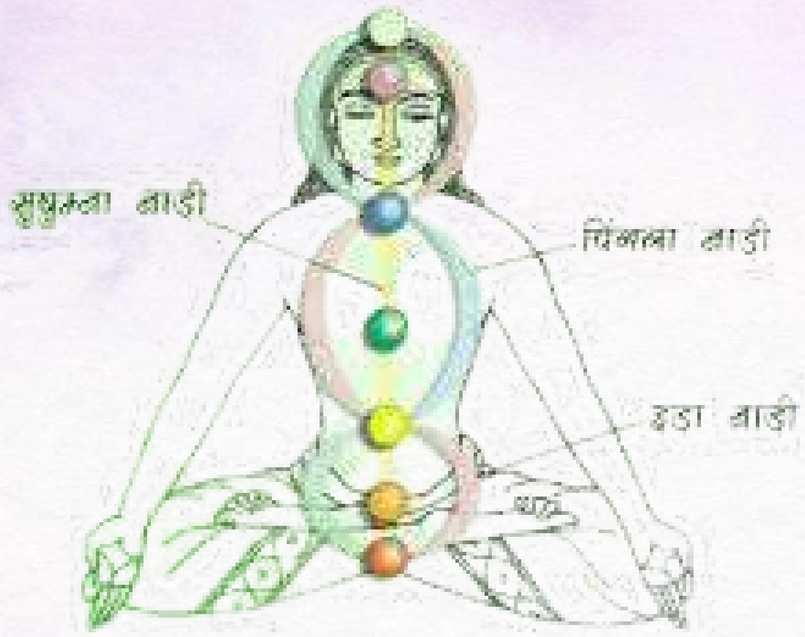

4. नाड़ी

चंद्र नाड़ी:

जब व्यक्ति भूतकाल के विचार करता है तब चंद्र नाड़ी में होता है।

सूर्य नाड़ी:

जब व्यक्ति भविष्यकाल के विचार करता है तब सूर्य नाड़ी में होता है।

मध्य नाड़ी:

जब हम वर्तमान में रहते हैं तब मध्य नाड़ी में होते हैं। हम आधी शक्ति भूतकाल के विचार तथा आधी शक्ति भविष्य की चिंता में गँवाते हैं। इसके परिणाम स्वरूप हम बहुत कम शक्ति से वर्तमान में कार्य कर पाते हैं।

5. चक्र

- **चक्र सूक्ष्म शरीर के ऊर्जा केंद्र हैं।**
- चक्र का प्राथमिक कार्य ब्रह्मांड से ताजी ऊर्जा ग्रहण करना तथा सूक्ष्म शरीर के दूषित ऊर्जा को बाहर फेंकना है।
- मेरुदंड की मध्य नाड़ी पर मुख्य सात चक्र स्थित है, जो सीधे अंतःस्रावी ग्रंथि से संबंधित हैं।
- **ध्यान से चक्र शुद्ध और विकसित हो सकते हैं।**

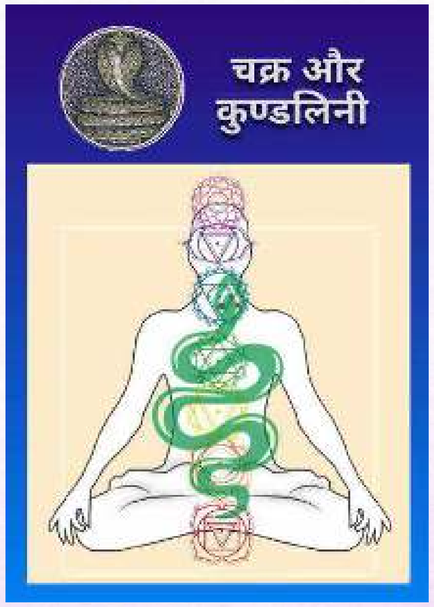

चक्रों की शुद्धि से प्राप्त हो सकते लाभ:

- **मूलाधार चक्र:** अनैतिक विचारों का शमन होते हुए रोगप्रतिकारक शक्ति में वृद्धि एवं स्वास्थ्य लाभ, अबोधिता और पवित्रता का भाव निर्माण होना
- **स्वाधिष्ठान चक्र:** अति विचारों पर नियंत्रण होते हुए एकाग्रता की प्राप्ति होना
- **नाभि चक्र**: जीवन में संतोष और समाधान की प्राप्ति एवं पारिवारिक जीवन में मधुरता आना
- **हृदय चक्र:** असुरक्षा की भावना दूर होते हुए निर्भरता की प्राप्ति, भावपक्ष का मजबूत होना एवं माता-पिता-संतान के संबंध में सुधार आना
- **विशुद्धि चक्र:** आत्मग्लानि का भाव दूर होते हुए कार्य सफलता, रचनात्मक अभिगम एवं भाई-बहन के संबंध में मधुरता
- **आज्ञाचक्र**: ईर्षा और वैरभाव दूर होते हुए क्षमा भाव विकसित होना एवं अहंकार पर नियंत्रण आना
- **सहस्रार चक्र:** विश्व चेतना से एकरूप होना

असुरक्षा जैसी वैश्विक समस्या हो या अनीति, अत्याचार और शोषण से भरा व्यवहार हो, छोटे से कुटुम्ब से लेकर वैश्विक स्तर पर फैली इन समस्याओं की जड़ें काफी गहरी है। मनुष्य ने बनाए नियम, कानून इनको रोकने के लिए पर्याप्त नहीं है।

नियमित ध्यानसाधना से इन चक्रों को दूषित करने वाली नकारात्मक ऊर्जा का शुद्धिकरण होता है और सहज ही सकारात्मक, संवेदनशील, नीतिपूर्ण रूप से जीना शुरू होता है। यानी आत्मिक गुणों का विकास होता है। समाज सुधार की शुरुआत आत्मसुधार से ही संभव है।

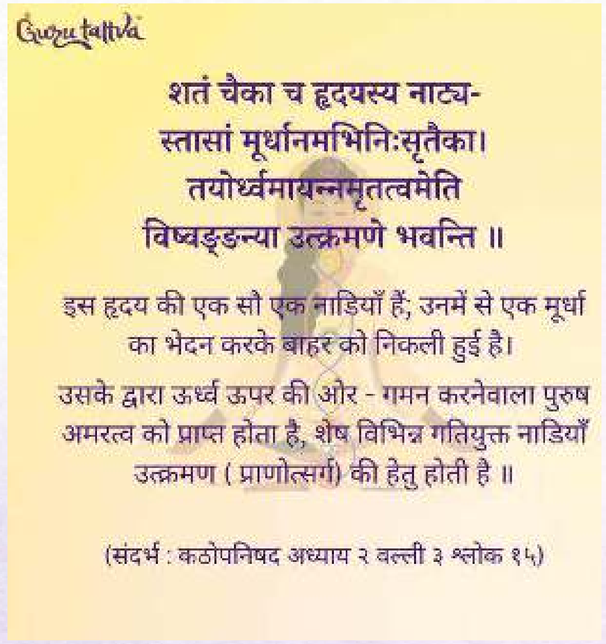

6. कुंडलिनी

हमारे प्रत्येक के शरीर में परमात्मा ने एक कुंडलिनी नामक शक्ति दी हुई है। हम जब अपनी माँ के गर्भ में होते हैं, तब लगभग चौथे माह में ही यह हमारे शरीर में प्रवेश करती है। और हमारे शरीर में सात चक्र होते हैं जो ऊर्जा के स्थान होते हैं, उनसे गुजरकर वह नीचे के चक्र मूलाधार चक्र के ऊपर एक त्रिकोणाकार अस्थि में स्थित हो जाती है। हमारे जो चक्र अच्छे होते हैं वे चक्र इस ऊर्जा को ग्रहण कर पाते हैं और जो जन्म से कमजोर चक्र होते हैं, वे ग्रहण नहीं कर पाते हैं।

मूलाधार चक्र के उपर स्थित कुंडलिनी शक्ति, जीवंत सद्गुरु रूपी माध्यम के पास जाकर इच्छा करने पर जागृत होती है और फिर वह सहस्रार चक्र तक ऊपर आती है और नियमित इसकी साधना करने से हमारे सातों चक्र पवित्र और स्वस्थ हो जाते हैं और हम हमारे जीवन में संपूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त होते हैं। शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य हमें प्राप्त होता है। कुंडलिनी शक्ति एक पवित्र शक्ति है। यह जागृत होने पर हमारा हमारे शरीर पर नियंत्रण होने लगता है और ध्यानयोग स्वयं ही लगने लगता है। **इस शक्ति को जगाकर सहस्त्रार चक्र तक पहुँचना ही आध्यात्मिकता का सबसे बड़ा उद्देश्य होता है।**

- सद्गुरु श्री शिवकृपानंद स्वामीजी (संदर्भ - समग्र योग पुस्तिका)

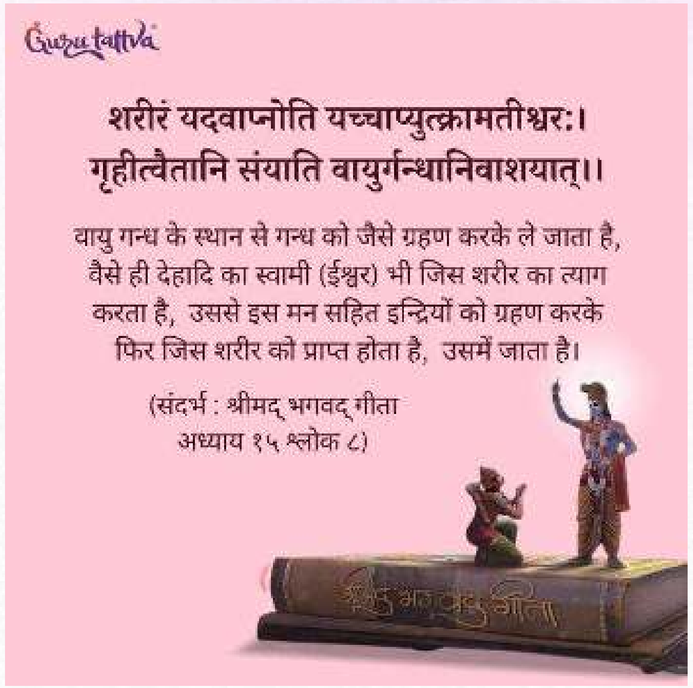

पूज्य स्वामीजी बताते हैं : वास्तव में जिस प्रकार से मनुष्य जन्म लेता है ना तो जन्म लेते समय केवल तीन बातें उसके साथ में रहती है।

- एक रहती है – **आत्मा।** जो परमात्मा का अंश है। उसको लेकर ही मनुष्य जन्म लेता है।
- दूसरी रहती है **कुंडलिनी शक्ति।** कुंडलिनी शक्ति में उसके पूर्वजन्मों का हिसाब-किताब सारा रेकॉर्ड रहता है, कौन से अच्छे कर्म किए, कौन से बुरे कर्म किए, उसका हिसाब रखता है।
- और रहता है - **सूक्ष्म शरीर।** सूक्ष्म शरीर से आशय उसने पूर्वजन्म में कितनी आध्यात्मिक प्रगति की? पूर्वजन्म में कितना आध्यात्मिक प्रोग्रेस किया? उसका सारा हिसाब-किताब उसके अंदर रहता है। यह तीनों को लेकर के जन्म लेता है। यह तीनों बातें शाश्वत हैं, सत्य हैं। बाकी जितनी भी बातें हैं मनुष्य के जन्म के बाद जितनी जुड़ती जाती है, जितनी जुड़ती जाती है, जितनी जुड़ती जाती है और जितने हम जोड़ते जाते हैं, जोड़ते जाते हैं वह सब बाहर की हैं। तो आपको देखने का है कि बाद में कितनी बातें जुड़ी हैं। देखिए बाद में नाम जुड़ा है, उसके बाद में जाति जुड़ी है, उसके बाद में फिर भाषा जुड़ी है, फिर धर्म जुड़ा है, फिर देश जुड़ा है राज्य जुड़ा है। यह सब बातें धीरे-धीरे, धीरे-धीरे आपके साथ जुड़ती चली गई। लेकिन जो तीन बातें लेकर के हम जन्मे थे, वो ही बातें महत्त्वपूर्ण हैं।

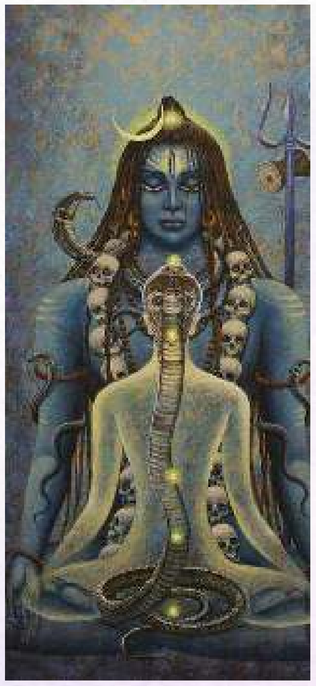

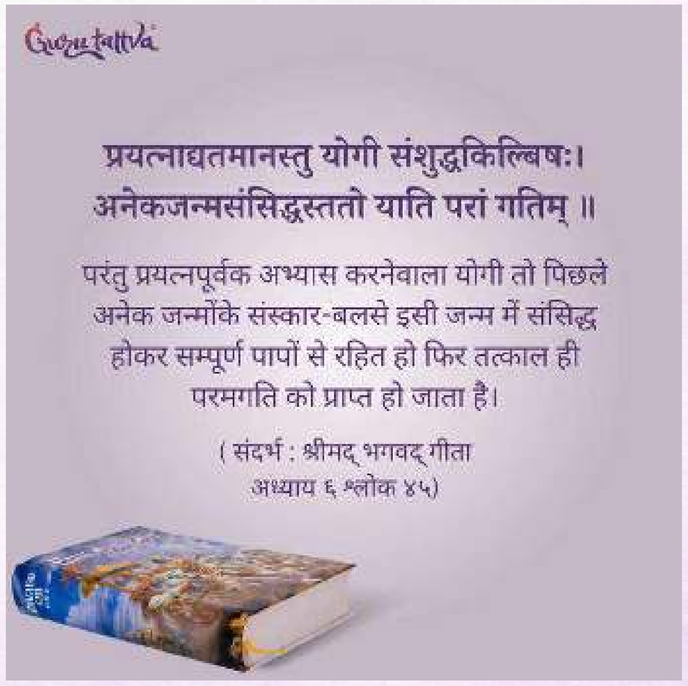

मनुष्य का शरीर मानो अश्वरथ हो और आत्मा सारथी हो तो चित्त वह अश्व है। अपने अश्व पर सारथी का नियंत्रण सदैव होना ही चाहिए।

7. चित्त

मन विचार करता है और चित्त उस स्थान पर पहुँचकर दृश्य दिखलाता है। इसलिए कहा जाता है जिसका अपने मन पर नियंत्रण है उसका अपने चित्त पे नियंत्रण स्वयं ही हो जाता है। त्रिकाल ज्ञानी कोई सिद्धि नहीं है, सशक्त चित्त से यह संभव होता है।

चित्त मनुष्यशरीर की एक अदृश्य इन्द्रिय है, जो कभी दिखता नहीं और देखा भी नहीं जा सकता, पर वह सूक्ष्म में होता है। और इसका आकार बढ़ाया नहीं जा सकता। वह एक निश्चित आकार का ही होता है। पर इस निश्चित आकार में स्थान बहुत थोड़ा होता है। और इस चित्त में मनुष्य ने क्या भरकर रखा है, इसी के ऊपर मनुष्य का सारा जीवन निर्भर करता है।

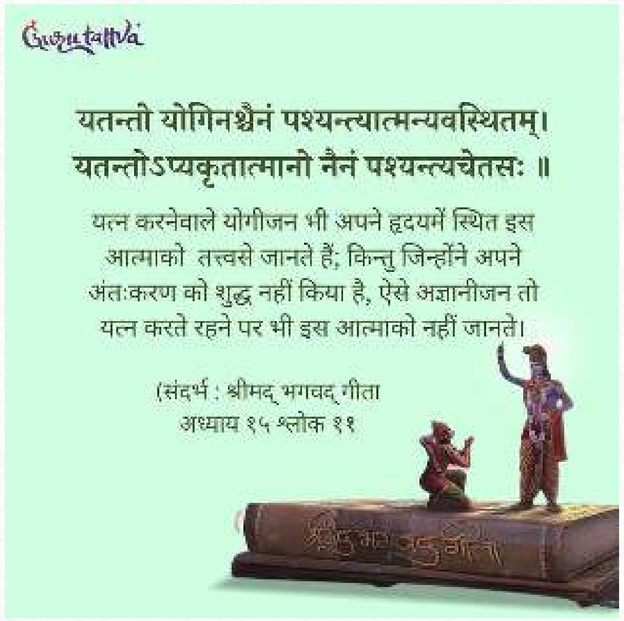

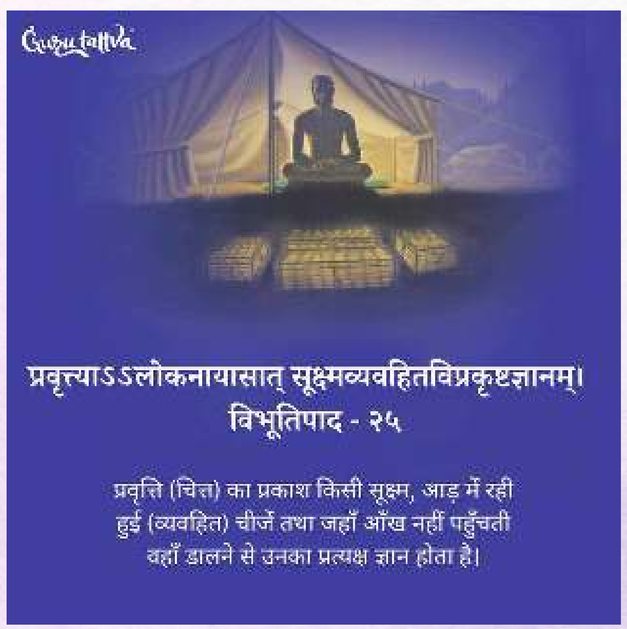

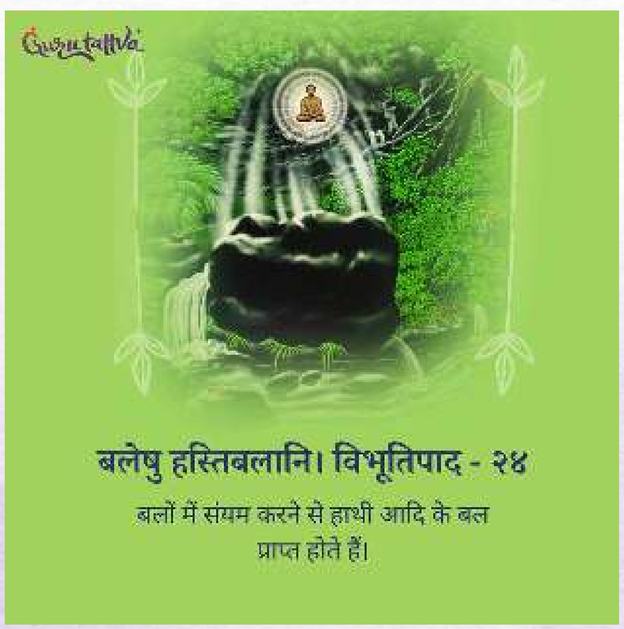

शुद्ध चित्त से आशय

- तुम्हारे मन में कोई वासना न हो, कोई समस्या न हो, किसी के प्रति बुरा भाव न हो।
- आप सब के प्रति अच्छा भाव ही रखो, चाहे सामनेवाला वह भाव आपके प्रति रखे या न रखे।
- कई लोग केवल 'योग' इसलिए करते हैं ताकि उनका शरीर सुडौल बन सके, वह बन भी जाता है।
- लेकिन अत्यधिक 'चित्त' शरीर पर होने के कारण 'चित्त' का नाश हो जाता है, क्योंकि हमने चित्त को नाशवान शरीर पर अत्यधिक रखा और फिर मानसिक समस्याएँ निर्माण होने लगती है।

अनमोल पत्थर

न जाने कितने लोगों में, स्थानों पर तथा घटनाओं में हमारा चित्त उलझा होता है। इस प्रकार हमारा चित्त कमजोर होता जाता है।

आत्मा उसे शुद्ध तथा सशक्त करना चाहती है। तभी तो देह को गुरुसान्निध्य में ले जाने का प्रयास करती है। इसीलिए साधक गुरुदर्शन के लिए, गुरुसान्निध्य के लिए तरसते हैं...

(क्रमशः)

- गुरुमाँ

स्रोत : मधुचैतन्य
अंक: जुलाई-अगस्त-सितंबर २००९
पृष्ठ : ११,१२

चित्त की लाक्षणिकता :

इसे सदैव खाली ही रखना चाहिए ताकि वह अधिक सशक्त व अधिक संवेदनशील हो जाए।

अति संवेदनशील हो जाने पर इसकी गति इसकी गति भी बढ़ जाती है, इसकी दृष्टि भी व्यापक हो जाती है। इसकी दृष्टि विश्व स्तर की हो जाती है। इसे ही आत्मा की शक्ति या अंतर्ज्ञान की शक्ति कहते हैं। एक मनुष्य अपने ही स्थान पर बैठे-बैठे ही विश्व के किसी भी भाग की संपूर्ण जानकारी जो भी आवश्यक हो, प्राप्त कर सकता है। अपने चित्त की शक्ति के कारण कोई भी घटना घटित कर सकता है। उसे वहाँ पर कार्य करने के लिए किसी भी शरीर की आवश्यकता नहीं रहेगी। चित्तशक्ति ही प्रकृति में समरस होकर प्रकृति से ही यह कार्य करा लेगी, क्योंकि तब चित्त प्रकृति संपूर्ण एक रूप हो जाता है और चित्त प्रकृति को एक दिशा देता है कार्य करने के लिए और चित्त की दिशा के अनुसार प्रकृति कार्य करती है।

एक प्रभावशाली चित्त अपनी बात को संप्रेषित करने की कला जानता है। वह शरीर से क्या कर रहा है उसका कोई अर्थ नहीं है, वह मनुष्य चित्त से क्या सोच रहा है वही होगा। वह मुख से चाहे अलग ही कह रहा हो, पर शरीर से चित्तशक्ति अधिक शक्तिशाली होने के कारण वही होगा जो उसका चित्त चाहेगा। इसलिए चित्त जितना खाली होगा, उतना शुद्ध होगा और जितना शुद्ध होगा, उतना शक्तिशाली बनेगा।

शरीर की तकलीफ तो क्षणिक ही होती है और उस क्षणिक तकलीफ का शरीर पर कोई स्थाई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पर चित्त की तकलीफ स्थाई होती है। अगर चित्त पर कोई बात क्षणिक भी आ जाए, तो वह सालों तक बनी रहती है। इसलिए शरीर मैला हुआ तो कोई बात नहीं, पर अपना चित्त मैला मत होने दो।

क्योंकि शरीर मैला हुआ तो वह धोया जा सकता है और क्षण में शरीर स्वच्छ हो सकता है, पर चित्त मैला हो गया तो उसे धोने में हमें सामूहिकता की आवश्यकता होती है और यह सामूहिकता वाला गुरु जब तक ना मिले, चित्त मैला ही रहता है।

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

स्रोत : हिमालय का समर्पण योग ग्रंथ
भाग २ पृष्ठ : १४५

चित्त खराब कैसे होता है?

मनुष्य को कभी चित्त के बारे में जानकारी ही नहीं होती है और जानकारी तब तक नहीं मिल सकती, जब तक वह उस प्रकार के चित्तवाले लोगों के बीच न रहा हो। अन्यथा अगर जानकारी हो ही जाए तो अपनी इस अमूल्य शाश्वत शक्ति को शरीर की सुविधाओं, शरीर के आराम पर और दैनिक घटनाओं पर खर्च नहीं करेगा और न ही इन बेकार की व्यर्थ बातों में अपना चित्त डालेगा। और जब मनुष्य का चित्त इन छोटी-छोटी बातों पर खर्च की नहीं होगा, तो वह समय के साथ-साथ सशक्त होता चला जाएगा।

अगर चित्त कमजोर हो जाए तो वह विचारों को भी कमजोर करता है और विचार कमजोर हो जाए तो शरीर भी कमजोर और भयभीत हो जाता है। यह सब मनुष्य के हाथ में है कि वह कैसे सामूहिकता में जीवनयापन करता है।

शरीर की तकलीफ तो क्षणिक ही होती है और उस क्षणिक तकलीफ का शरीर पर कोई स्थायी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पर **चित्त की तकलीफ स्थायी होती है।**

अगर चित्त पर कोई बात क्षणिक भी आ जाए तो वह सालों तक बनी रहती है, इसलिए शरीर मैला हुआ तो कोई बात नहीं, पर अपना चित्त मैला मत होने दो। क्योंकि शरीर मैला हुआ तो वह धोया जा सकता है और क्षण में शरीर स्वस्थ हो सकता है पर **चित्त मैला हो गया तो उसे धोने के लिए हमें सामूहिकता की आवश्यकता होती है और यह सामूहिकता वाला गुरु जब तक ना मिले, चित्त मैला ही रहता है।**

Guru tattva

चित्त स्वयं कभी गंदा या कमजोर नहीं होता, हम उन्हें दिनभर हजारों लोगों में डालकर गन्दा और कमजोर कर देते हैं।

आप आँखों से भी किसी की फोटो देखते हो तो उस फोटो का अच्छा या बुरा प्रभाव आप पर पड़ता है।

तो आप तो जीवन में आए बुरे-बुरे व्यक्तियों के फोटो चित्त से कई बार देखते ही रहते हो और चित्त गन्दा करते ही रहते हो। अब बहुत हो चुका।

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

स्रोत : मधुचैतन्य अंक जनवरी-फरवरी-मार्च, 2012

विचार और चित्त :

एक पानी का बुलबुला उठता है और क्षण में ही टूट जाता है। तो इस प्रकार की स्थिति विचार की होनी चाहिए। वह विचाररूपी बुलबुला उठा और क्षण में टूट गया। उस विचार की अवस्था क्षण में ही समाप्त हो गई। अगर ऐसा होता है तो उस विचार को जगह बनाने के लिए समय ही नहीं होता है। पर विचार अगर अधिक समय तक रहा तो उस विचार से संबंधित परिस्थिति, उस विचार से संबंधित मनुष्य व उनके चक्रों का प्रभाव, हमारा उनसे रिश्ता, यह सब बातें हमारे चक्रों पर खराब प्रभाव डालती है। साधारणत: विचार भूतकाल में बिताए गए समय, भूतकाल में आए मनुष्यों के होते हैं।

अच्छी घटना हो या बुरी, दोनों ही प्रकार की भूतकाल की घटनाएँ हमारे चित्त को नष्ट करती है। हाँ, यह बात अलग है कि अच्छी घटना हमें वर्तमान में दु:खी नहीं करती पर चित्त को तो नष्ट करती ही है। और बुरी घटना, बुरे व्यक्ति तो चित्त में उस जख्म के समान होते हैं जो चित्त को तो नष्ट करते ही हैं और हमें भी दु:ख पहुँचाते हैं।

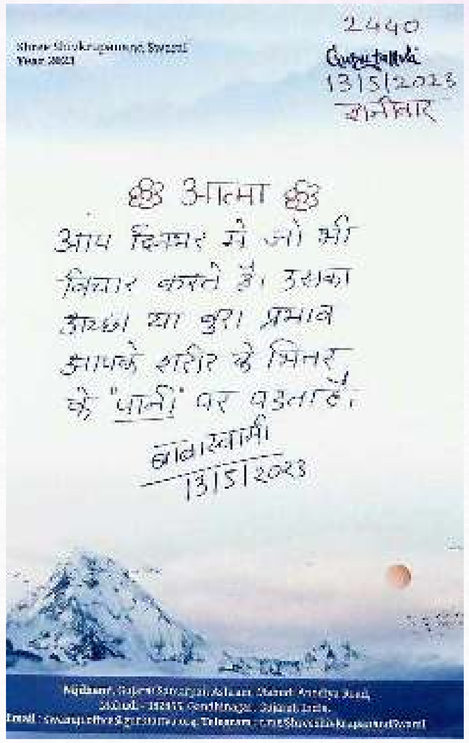

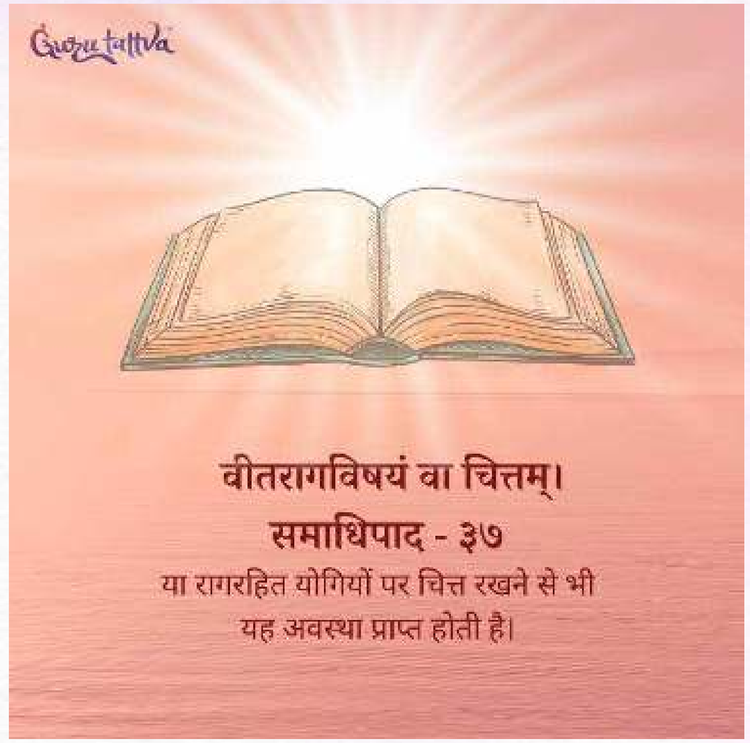

सान्निध्य

अब अगर चित्त पर नियंत्रण रखना है, तो प्रथम मुझे मेरे विचारों पर नियंत्रण करना पड़ा। और विचारों का संबंध मेरे शरीर के साथ था तो मुझे मेरे शरीर पर भी नियंत्रण करना पड़ा और शरीर तो आधा 'देव' है और आधा 'दानव' है। अगर शरीर 'देवों' के सामूहिकता में रहता है, तो 'देवत्व' के गुण मुझमें विकसित होते हैं और 'दानव' के संगत में रहता है, तो 'दानव' के गुण विकसित होते हैं। यानी शरीर पर भी शरीर का नियंत्रण नहीं होता है। यानी चित्त और शरीर दोनों में यह समानता है, जहाँ रहता है वहाँ से ग्रहण कर लेता है। यानी सबकुछ 'सान्निध्य' के उपर ही निर्भर है।

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : पवित्र आत्मा ग्रंथ पृष्ठ : १६

जिस प्रकार से कोई जख्म शरीर पर हो जाए तो हम उस जख्मों से छेड़छाड़ नहीं करते, उसे कुरेदते नहीं है; उसे भरने देते हैं और समय के साथ-साथ वह भर जाता है। ठीक इसी प्रकार से यह चित्त में भर कर रखी हुई घटनाएँ भी बार-बार याद नहीं करनी चाहिए, क्योंकि बार-बार याद करके हम उन जख्मों को कुरेद रहे हैं और उन्हें भरने नहीं दे रहे हैं।

चित्त मनुष्यजीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें अच्छा भरा हो या बुरा, उस चित्त में स्थान को घेरता है। **वर्तमान में सफल जीवन व्यतीत करने के लिए चित्त का खाली होना अत्यंत आवश्यक है। चित्त खाली होगा तो शुद्ध होगा।** उसमें अच्छे या बुरे कोई व्यक्ति नहीं होंगे। और खाली होगा तो ही पवित्र होगा और पवित्र होगा तो ही सशक्त होगा और सशक्त होगा तो ही वह परमात्मा की शक्तियों से जुड़ सकता है।

परमात्मा में लीन चित्त

परमात्मा सारे ब्रह्मांड में छोटे-छोटे प्राण कणों के रूप में फैला हुआ है और इस प्राणशक्ति के कणों की सामूहिकता के साथ जुड़ जाते हैं तो **परमात्मा के यह बाहरी कण और चित्त इतने एकरूप हो जाते हैं कि बाहरी करण और भीतरी कण समान हो जाते हैं और मनुष्य का शरीर होने पर भी दिखता नहीं है।** और यही कारण है कि यहाँ, हिमालय पर ध्यान कर रहे मुनि होते हैं, पर दिखते नहीं है। दिखता केवल इतना ही है कि वे जहाँ बैठे हैं, वहाँ प्राणशक्ति के कणों का इतना जमावड़ा हो जाता है और वे ही सामूहिक रूप से चमकते रहते हैं। और इसी एक साथ चमकने से प्रकाश जैसा लगता है। **वह प्रकाश चंद्रमा के प्रकाश जैसा ही होता है और उसी प्रकाश की एक मोटी पट्टी से उस प्रकाश की एक गोल किनारी बनती रहती है।** और जो भी यह दृश्य देखता है, वह भी देखता ही रहता है। वहाँ से ध्यान हटाने का भी ध्यान नहीं रहता है। यह सब इसलिए संभव हो जाता है कि ये ऋषि-मुनि अपने चित्त को एकदम खाली कर देते हैं। उनके चित्त में कहीं भी, किसी कोने में भी कोई स्मृति नहीं होती है। कोई याद ही नहीं होती है, कुछ नहीं होता है और इसी कारण उनका चित्त एकदम सशक्त होता है।

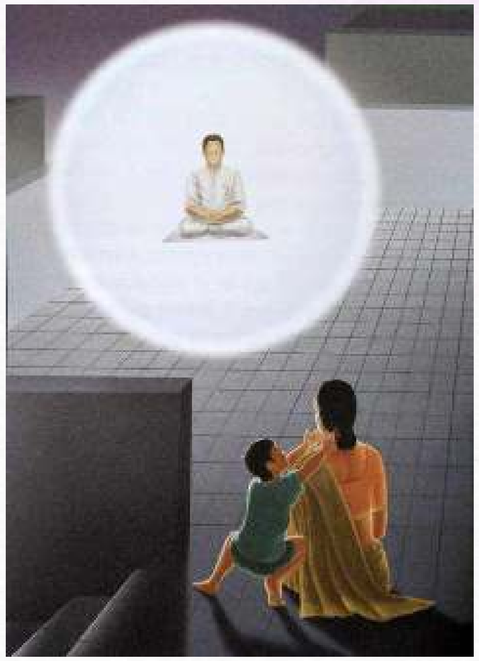

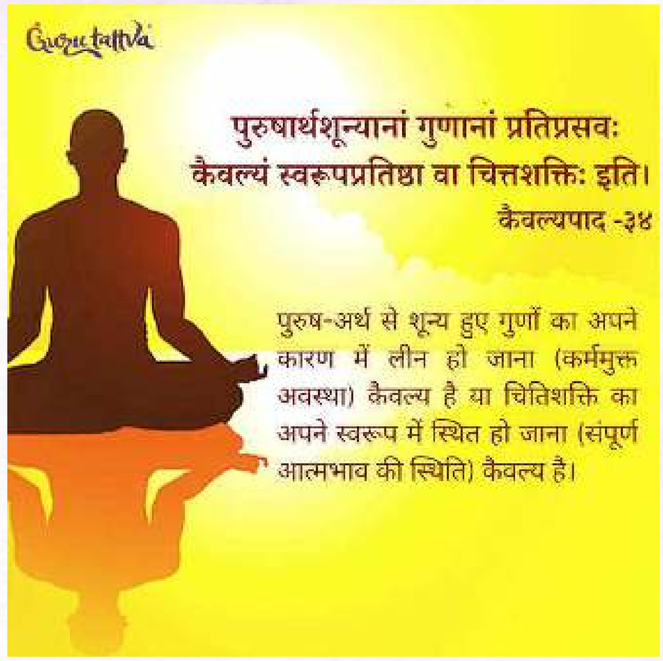

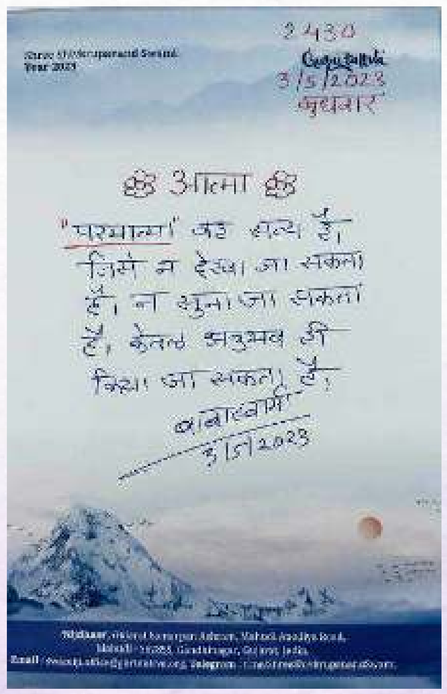

हम कल्पना भी करें अपने ऐसे चित्र की जिसमें भूतकाल की कोई बात नहीं है; न अच्छी बात और न बुरी बात, कुछ भी नहीं है, तो भी क्षण में ही चित्त एक ऊंचाई को प्राप्त कर लेता है। **वह शून्य की ऊँचाई, जिस ब्रह्मांड की ऊँचाई** के बाद पाने के लिए कुछ बाकी नहीं रहता है। और उन प्राणशक्ति के कणों से चित्त भरने लग जाता है और **एक नाद हमारे ही भीतर सुनने मिलता है, जिसे ब्रह्मनाद कहते हैं।** और यह तब सुनाई आता है, जब शरीर का सारा भाव समाप्त हो जाए, सारे विचार समाप्त हो जाए, चित्त एकदम खाली हो जाए पवित्र हो जाए।

यह एक अति पवित्र स्थिति है जिसमें हमारी आत्मा परमात्मा में पूर्ण रूप से लीन हो जाती है। ऐसी स्थिति में कोई भाव बाकी नहीं रहता है। न कोई गुरु है और न कोई शिष्य है क्योंकि यह भेद शरीर का भेद है, न कोई देने वाला है और न कोई पाने वाला है, न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है। **यह वह स्थिति है जिसमें हम गुरु में लीन हो जाते हैं। गुरु फिर अलग नहीं रहता है।**

8. गुरु

- 'गुरुर् ब्रह्मा' इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह हमारी आत्मा को जन्म देता है।
- 'गुरुर् विष्णो' इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह आपका आध्यात्मिक रूप से 'पालनकर्ता' है।
- 'गुरु' को महेश्वर इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह आपके 'भूतकाल' को नष्ट करता है, आपको वर्तमान काल में लाता है।
- 'गुरु' आत्मा को जन्म देता है, इसीलिए गुरु को 'आत्मा की माँ' कहा जाता है।
- 'गुरु' ही परमात्मा है। मानो तो है। अन्यथा मनुष्य तो वह है ही, सबकुछ आपके मानने पर निर्भर है।
- 'गुरु' की आत्मा को देखने के लिए हमें आत्मा की आँख चाहिए होती है।
- 'गुरु' जो दिखता है, वह नहीं। जो दिखता नहीं है, वह दिखना सिखाता है।
- 'गुरु' के शरीर से कुछ भी ज्ञान लेने जैसा नहीं होता, जो कुछ लेने जैसा रहता है, वह उसकी आत्मा से लेने जैसा रहता है।
- 'गुरु' से आपका व्यवहार कुछ भी हो - अच्छा हो, बुरा हो। उसका आपसे व्यवहार तो केवल आपके आत्मकल्याण का ही होता है।
- 'गुरु' को हम देखते हैं, जानते हैं, लेकिन मानते नहीं है। यह केवल अहंकार के कारण।
- 'गुरु' न तो देखने की चीज है। और न जानने की। वह तो मानने के लिए ही होता है।
- 'गुरु' परमात्मा नहीं है, क्योंकि वह शरीरधारी है। कोई शरीर ही परमात्मा नहीं हो सकता है क्योंकि परमात्मा एक विश्वव्यापी शक्ति है। गुरु के भीतर से बहने वाली 'शक्ति परमात्मा है।'
- 'गुरु' के भीतर से बहने वाली परमात्मा की शक्ति पर एकाग्रता करने के लिए गुरु को ही परमात्मा मानना होता है क्योंकि हम साकार है तो साकार को पकड़कर ही निराकार तक पहुँच सकते हैं।

"निर्विचार स्थिति पाने के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं है। पर ध्यान में गुरु से सिर्फ ज्ञान नहीं, संस्कार भी संक्रमित होते हैं, जो निर्विचार स्थिति के अनेकविध उपायों से भी संभव नहीं है।"

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
(स्रोत: जैन मुनि शिबिर २०१५)

- 'गुरु' दुनिया में एकमात्र है, जो हमको अंतर्मुखी करता है। बाकी सब तो हमारे 'चित्त' बाहर ले जाने वाली बातें हैं।
- 'गुरु' को आप भले ही गालियाँ दो तो भी वह आपको सदैव आशीर्वाद ही देगा, क्योंकि उसके पास आशीर्वाद के सिवा कुछ भी नहीं है। यह ठीक ऐसा है, जैसे आप गुलाब फूल को गालियाँ दो, वह आपको तो केवल 'खुशबू' ही दे सकता है।
- 'गुरु' वह रिक्त शरीर होता है, जो शरीर तो होता है पर शरीर में शरीरभाव नहीं होता।
- हम जिन्हें भगवान मानते हैं, वे भी उनके समय के शरीरधारी 'गुरु' ही थे।
- 'गुरु', परमात्मा और आत्मा सब एक ही नाम अलग-अलग है। यह मेरा अनुभव है और आपका ?

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सोशल मीडिया
दिनांक: 19/02/2023 से 31/03/2023

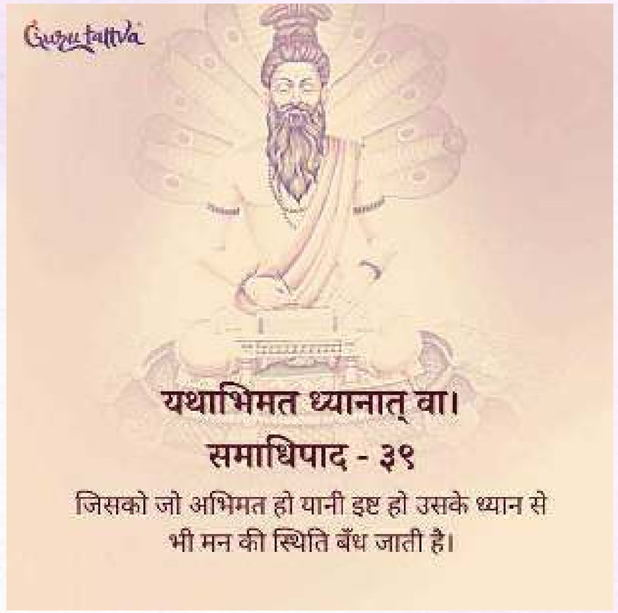

गुरु और सद्‌गुरु

गुरु और सद्‌गुरु में यह अंतर है कि गुरु ने ज्ञान प्राप्त किया रहता है, सीखा रहता है, वही ज्ञान सिखा भी सकता है और सद्‌गुरु कुछ भी सिखाने या सीखने के परे होता है। वह देता कुछ भी नहीं, पर सद्‌गुरु के सान्निध्य में शिष्य में वह अति सूक्ष्म ज्ञान ट्रांस्फर हो जाता है। इसमें सद्‌गुरु सिखाता नहीं है, शिष्य सीखता नहीं है।

सद्‌गुरु से प्राप्त होने वाला ज्ञान 'आत्मज्ञान' होता है। यह एक आत्मा से दूसरी आत्मा में केवल समरस होने पर ही हो जाता है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत: आत्मेश्वर ग्रंथ
पृष्ठ : ७१,७२

आपको सरल शब्दों में समझाऊँ तो कोई भी मनुष्य गुरु बनना चाहे तो वह उस मार्ग का ज्ञान प्राप्त करके गुरु बन सकता है।

- महर्षि श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

"सद्गुरु" - आज के युग की आवश्यकता

आज के युग में स्पष्ट और सत्य बात कहने की हिम्मतवाले सद्गुरु की आवश्यकता है। क्योंकि आज के समय में बुराई लेकर सत्य बात कहने वाले केवल और केवल सद्गुरु ही हैं। आपकी बात का, आपकी समस्या का फायदा लेने वाले, मजाक उडाने वाले, वह बात सुनकर सबको बताने वाले तो कदम-कदम पर पड़े हैं, पर एक स्थान सद्गुरु ही ऐसा है, जो आपको सत्य, भले ही वह कड़वा हो, बताएगा और भले ही आपके मन के विरुद्ध हो, तो भी बताएगा

और **आपकी समस्या को अपनी चित्तशक्ति से दूर करेगा। ऐसा 'सद्गुरु' मिलना आज 'दुर्लभ' है और जिन्हें मिला है, उन्हें उसका तो एहसास ही नहीं है।**

सद्गुरु का चित्त तो आपकी समस्या पर जाते ही आपकी समस्या दूर हो जाती है बशर्ते आपने उतने **'भाव' और 'विश्वास'** के साथ बताई हो। लेकिन सद्गुरु के सान्निध्य का उपयोग, अपनी समस्याएँ दूर करने के लिए मत करो।

सद्गुरु के सान्निध्य का उपयोग अंतर्मुखी होने के लिए करना सर्वश्रेष्ठ होता है। सद्गुरु का सान्निध्य आपको कितने क्षण मिला वह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, आपने उस सान्निध्य का उपयोग कैसे किया वह महत्त्वपूर्ण है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत: आत्मेश्वर पृष्ठ : ७७

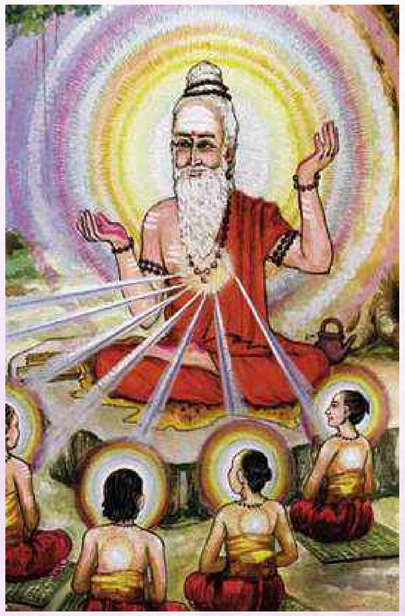

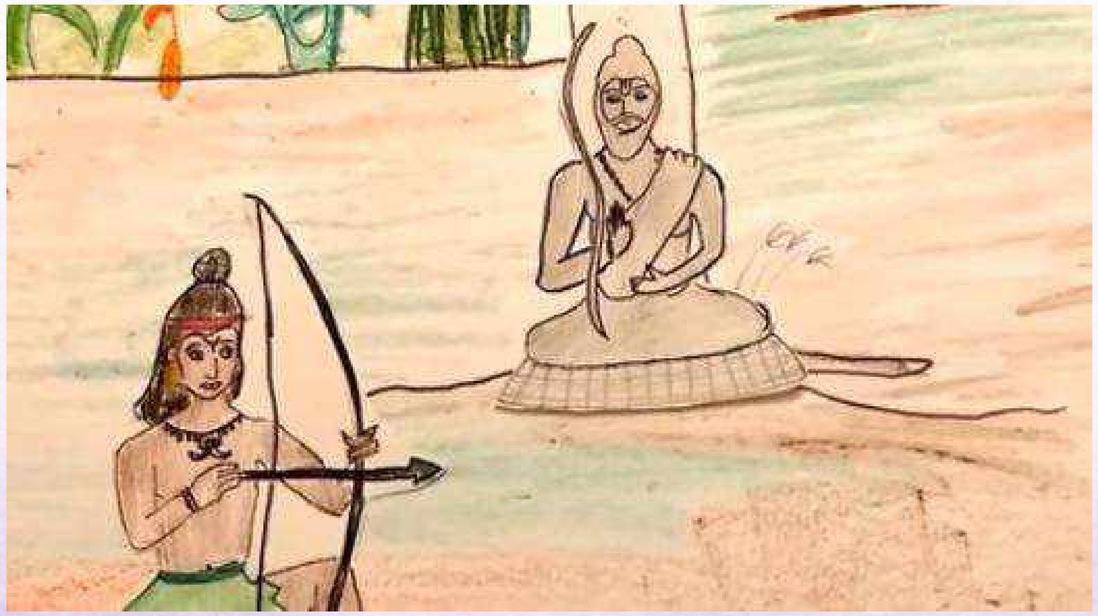

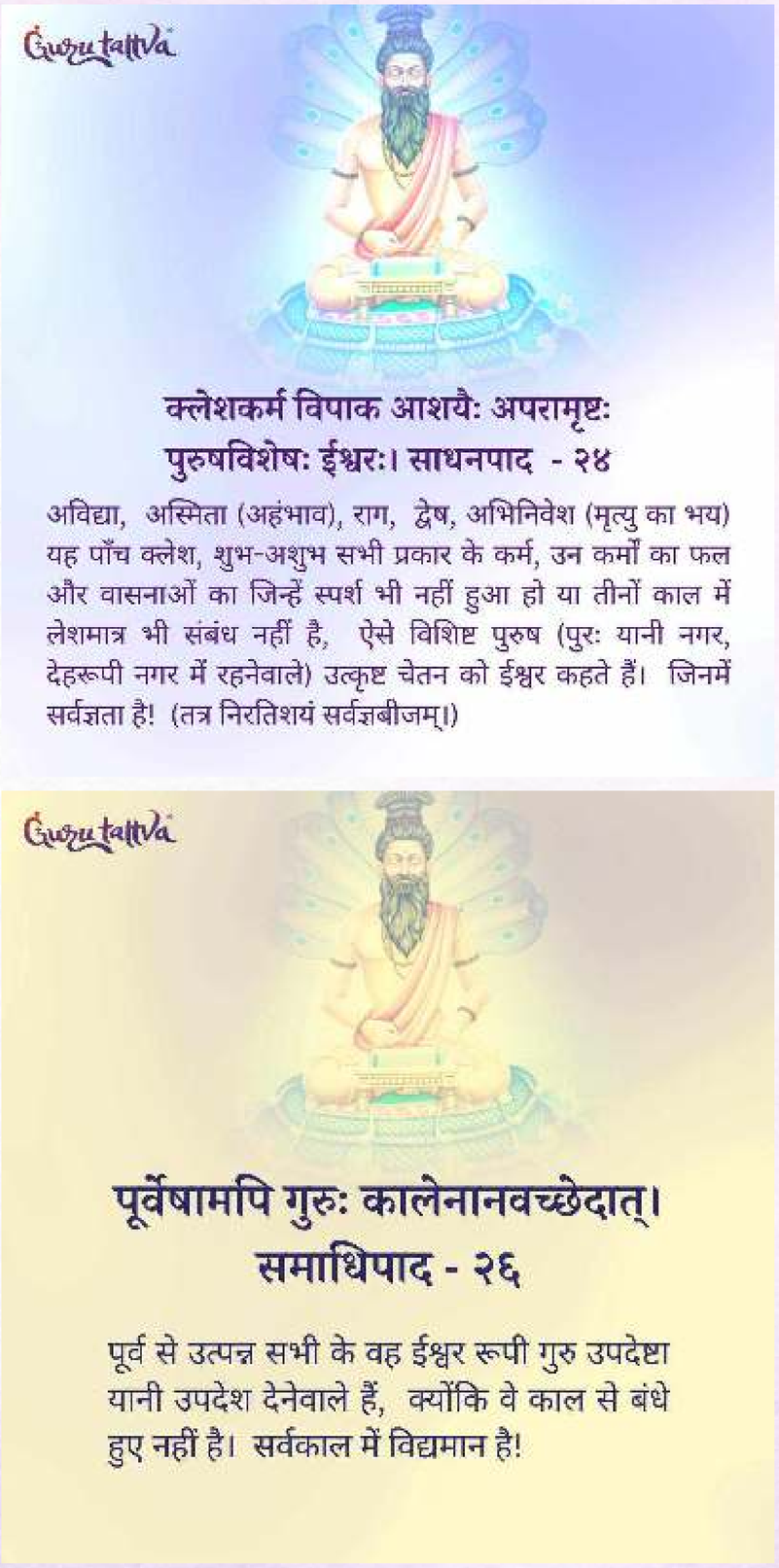

आत्मसाक्षात्कार क्या है...

आत्मसाक्षात्कार तो बीज जैसा है। बिना बीज के वृक्ष का निर्माण संभव नहीं है और बिना देखरेख के भी बीज का निर्माण संभव नहीं है।

आत्मसाक्षात्कार तो केवल अपने आत्मा के साथ परिचय होना मात्र है, पर नियमित ध्यान करके ही इस परिचय को संबंध में स्थापित करना होता है। आपका संबंध जैसे-जैसे गहरा होता चला जाएगा, वैसे-वैसे आत्मा का आधिपत्य आप पर होना शुरू हो जाएगा।

आत्मसाक्षात्कार जीवन का मैनेजमेंट करता है। जो योग्य है, वही होने देता है। जिसे आवश्यक नहीं समझता, नहीं होने देता है। आत्मसाक्षात्कार के बाद आत्मा का दिया प्रकाशित हो जाता है और इसके प्रकाश में चारों ओर उजाला ही उजाला हो जाता है और अँधेरा दूर हो जाता है। अगर अपने आसपास का अँधेरा हटाना है तो स्वयं को प्रकाशित करना होगा।

और अपने-आपको प्रकाशित कर सको, इतना ही जीवन है। इसीलिए इस छोटे से जीवन को यह देखने में मत गँवाओं कि इस दुनिया में अँधेरा कहाँ तक है, बस, अपना दिया जला लो।

आत्मसाक्षात्कार किया नहीं जाता क्योंकि यह ईश्वरीय किया है। यह कोई कर ही नहीं सकता, यह हो जाती है। **एक आत्मसाक्षात्कारी सद्गुरु के सान्निध्य में यह क्रिया स्वयं ही घटित हो जाती है।**

आत्मसाक्षात्कार भी प्राप्त होता है आपकी शुद्ध इच्छा के कारण, क्योंकि प्रथम आप इच्छा करते हो, फिर आपका चित्त उस पर जाता है और फिर आप किन्हीं आत्मसाक्षात्कारी सद्गुरु के सान्निध्य में जाते हो और उनके सान्निध्यमात्र से आत्मसाक्षात्कार प्राप्त होता है।

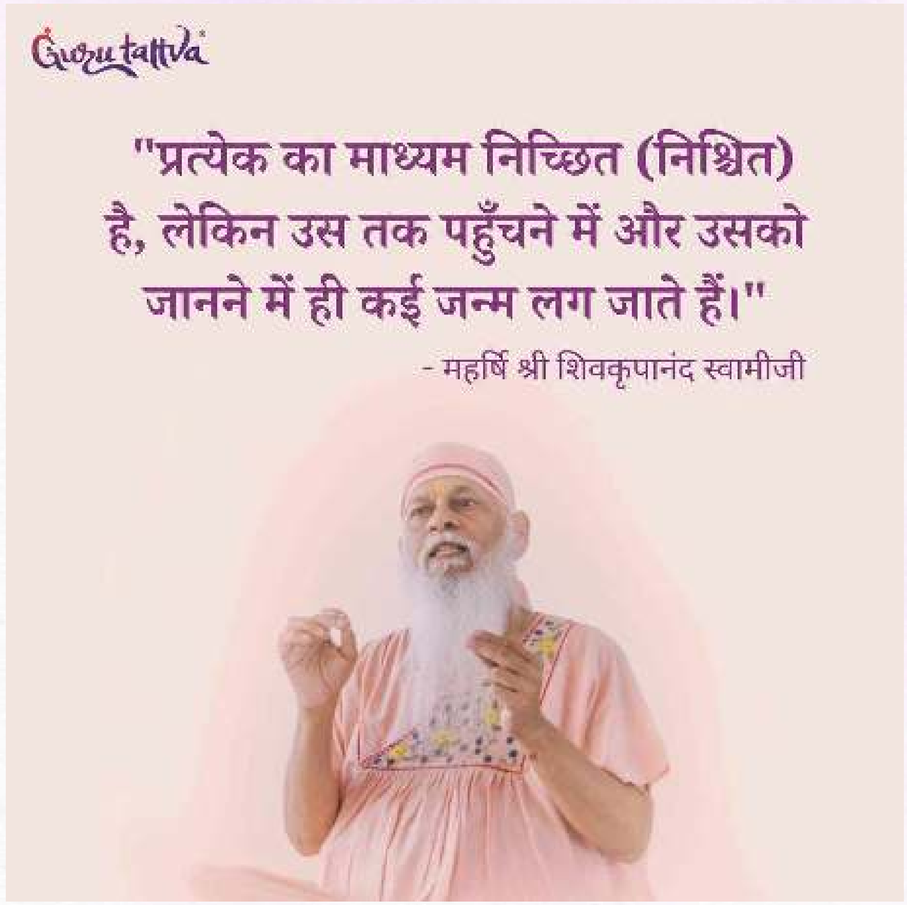

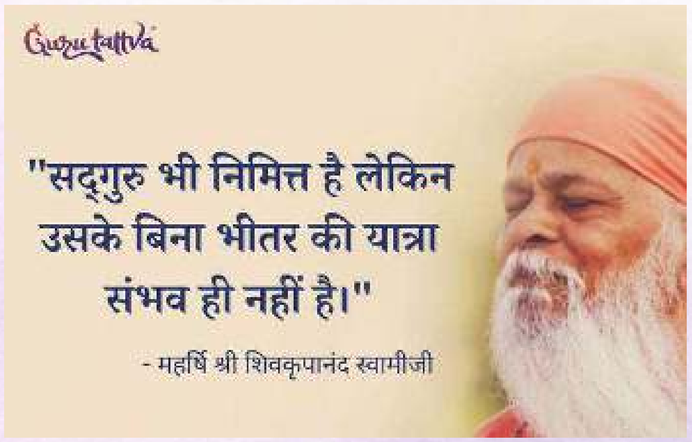

सद्गुरु से आत्मसाक्षात्कार

- **परमात्मा का आत्मा से और आत्मा का परमात्मा से योग ही समग्र योग है।**
- और वह तब तक सम्पूर्ण नहीं होता जब तक कोई भीतर गया हुआ माध्यम हमारे जीवन में नहीं आता है और तब तक हमारी भीतर की यात्रा प्रारंभ ही नहीं होती है।
- वह माध्यम उसके भीतर बहनेवाली सामूहिकता की शक्ति हमारे भीतर प्रवाहित कर देता है। वह कर सकता है कहने से अच्छा है, उसके सान्निध्य में हो जाती है।
- यह ठीक वैसी ही घटना है, जैसे एक मोमबत्ती अपने ही स्थान पर जल रही है। और उसे, उसके प्रकाशित रूप को देखकर अन्य मोमबत्तियों को प्रेरणा मिलती है।
- और वे भी प्रकाशित मोमबत्ती के पास जाकर अपनी बाती से उसकी प्रकाशित बाती को स्पर्श करती हैं तो वे भी जल उठती हैं।
- अब वह जलती हुई मोमबाती नई मोमबत्ती को जलाती है क्या? नहीं, वह तो अपने ही स्थान पर जलती रहती है, उसके सान्निध्य में नई मोमबत्ती जल उठती है। यह आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति ऐसी ही कुछ है।
- यह **आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो जाने पर ही आध्यात्मिक प्रगति का प्रारंभ होता है।**

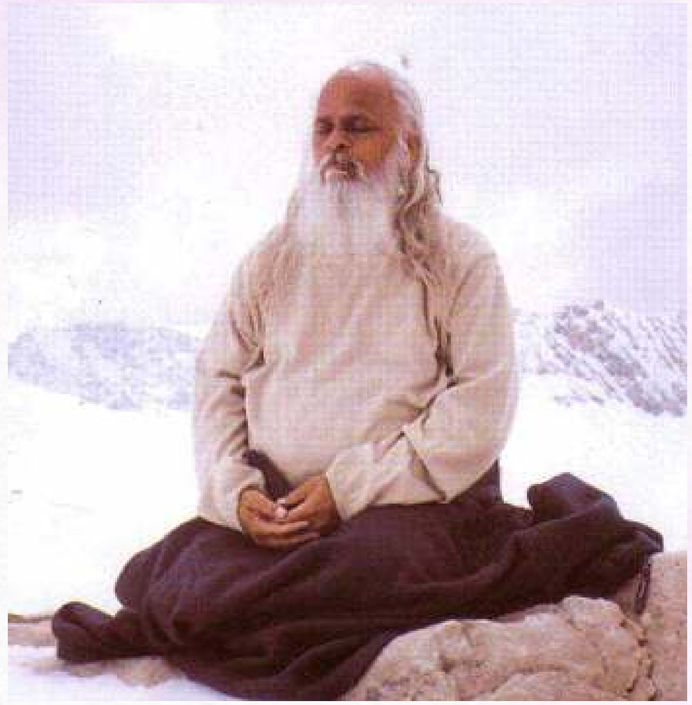

'आत्मसाक्षात्कार' पाना प्रत्येक आत्मा का लक्ष्य होता है। आपने इस लक्ष्य को पाने के लिए कई जन्म लिए हैं, अब पा लिया है तो आगे बढ़ो।

केवल आत्मसाक्षात्कार पाके कुछ नहीं होगा, नियमित सामूहिक रूप में ध्यान करो।

इस वैचारिक प्रदूषण वाले जगत में सामूहिकता के बिना आध्यात्मिक प्रगति संभव ही नहीं है। अच्छी सामूहिकता में रहो।

परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : 'सत्य का आविष्कार' ग्रंथ पृष्ठ : 47

Guru tattva

गुरुतत्त्व की प्रगति

पहले गुरु की दृष्टि से, गुरु के मन्त्र से, गुरु के स्पर्श से ही आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो सकता था।

आज गुरुतत्त्व की इतनी प्रगति हुई है कि गुरु के विडिओ देखने मात्र से भी आत्मसाक्षात्कार सुपात्र आत्माओं को होता है।

तो प्रश्न - सद्गुरु के स्थूल शरीर को क्यों कष्ट दिया जाए? क्यों न स्थूल को "ओरा शास्त्र" जैसा अजरामर ग्रन्थ को समय देने के लिये एकांत दिया जाए?

यह साधिका की केवल विडिओ शिविर से आयी आत्मअनुभूति से गुरुशक्तियों को लगा, इसलिए मैंने केवल आप तक पहुँचाया, बस और क्या!

"सामान्यतः सद्गुरु के साधना के कार्यकाल की जानकारी समाज को नहीं हो पाती है। सद्गुरु का वह कठिन समय और उसके जीवन के लाखों असफल आध्यात्मिक प्रयासों को समाज कभी जान ही नहीं पाता है। समाज को तो वह (सद्गुरु के) आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँचने के बाद ही दिखता है। पर प्रत्येक सद्गुरु के जीवन का साधना व तपस्या का कठिन समय होता ही है। 'सोना' सदैव तपकर ही कुंदन बनता है।"

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
(स्त्रोत : सत्य का आविष्कार)

आत्मजागृति की अनुभूति

आत्मजागृति की अनुभूति एक जीवंत प्रक्रिया है। वह किसी जीवंत गुरु की इच्छाशक्ति से ही संभव है। आप समाधिस्थ गुरु से प्रार्थना करोगे तो वे ही आपके जीवन में जीवंत गुरु को भेज देंगे, क्योंकि **अनुभूति केवल जीवंत गुरु ही करा सकते हैं।** जीवंत गुरु अंतिम पड़ाव नहीं है। **बाद में ध्यानयोग करके आप अपने स्वयं के ही गुरु बन जाओ, यह अंतिम पड़ाव है।**

आत्मा हमारे ही भीतर होती है और आत्मा का ज्ञान भी हमारा अपना ही होता है। लेकिन वह हमें तभी प्राप्त होता है, जब जीवंत गुरु हमारे जीवन में आते हैं।

जीवंत गुरु निमित्य हैं। वे आत्मजागृति कराते नहीं, बल्कि उनके सान्निध्य में आत्मजागृति होती है। उनके बिना आत्मजागृति संभव नहीं है।

यह ठीक वैसा ही है, जैसे हमारे बेंक के लॉकर में हमने बहुमूल्य जेवर रखे गए हैं और जब तक बेंक मेनेजर अपनी चाबी लॉकर में नहीं लगाता, हम लॉकर खोलकर जेवर नहीं ले सकते। जेवर पर अधिकार हमारा है लेकिन फिर भी बेंक मेनेजर की सहमति के बिना जेवर प्राप्त करना संभव नहीं है। बस, अध्यात्म में भी ऐसा ही है।

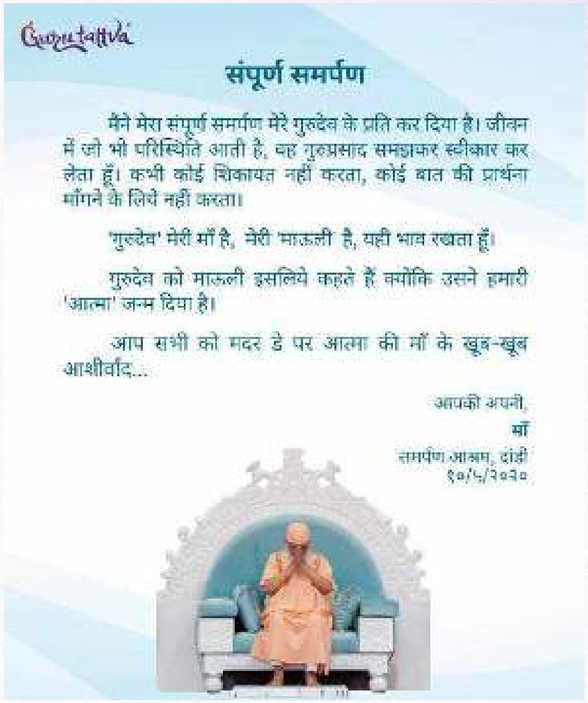

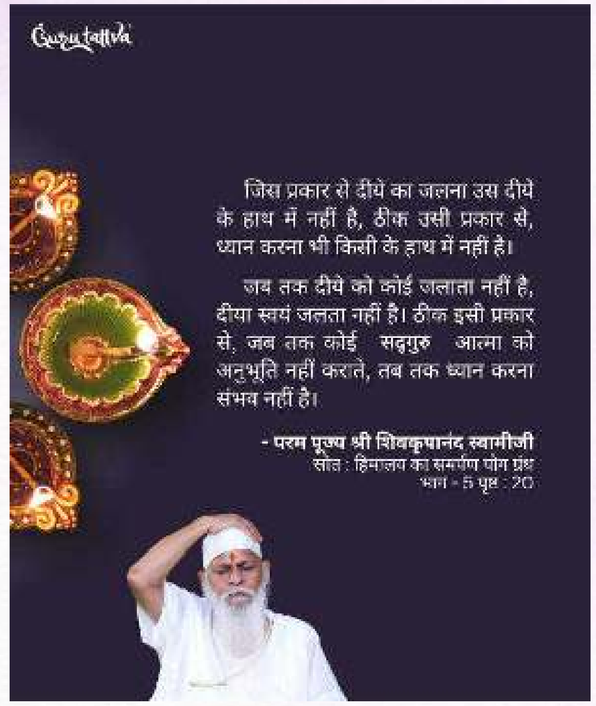

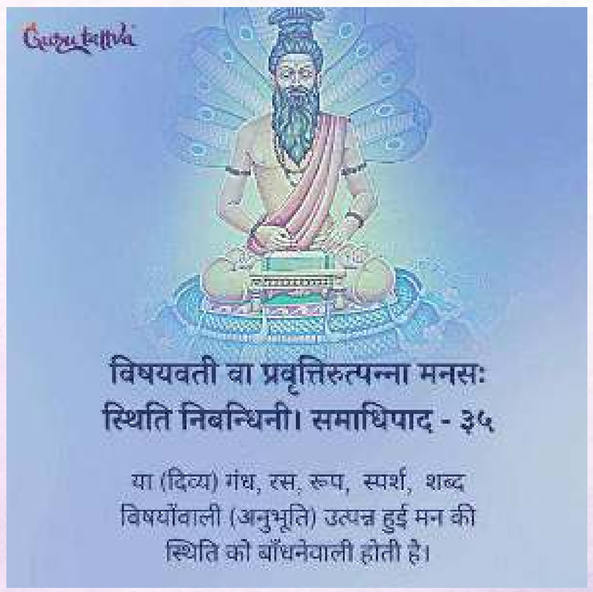

हमारी मानवसभ्यता को विकसित होने में हजारों साल लगे हैं। और बाद में विभिन्न संतो ने, विभिन्न गुरुओं ने मनुष्य के मानव धर्म विकसित करने के प्रयास किए। उन सब का प्रयास तो मानव धर्म विकसित करना ही था, लेकिन मानव कहीं छूट गया और धर्म विकसित हो गया और फिर अलग-अलग धर्म बन गए। लेकिन सभी धर्मों के मूल में तो एक ही उद्देश्य था, मानवता को विकसित करना। इसलिए यह मानव समाज की स्थिति देखकर 800 साल की तपस्या और साधना के बाद उन्होंने बोलने और समझाने का मार्ग छोड़कर सीधा अनुभूति का मार्ग खोज निकाला।

यह अनुभूति का मार्ग ही समर्पण संस्कार है। आपका बाहरी धर्म कुछ भी क्यों ना हो, आपको अनुभूति एकसमान होती है। वह अनुभूति से सीधा यह अनुभव का ज्ञान होता है। हम सब मानव समान हैं। हम भले ही अलग देश के हो, अलग धर्म के हो, अलग भाषा के हो, लेकिन भीतर से सब समान है। सब उस विश्वचेतना से जुड़े हैं, जिसे परमात्मा कहते हैं।

- बाबा स्वामी 25-11-2017

समर्पण ध्यानयोग के कुछ तत्त्व

परमात्मा

हमारी उपासना पद्धतियाँ अलग-अलग हैं और हम अज्ञानता के कारण उपासना पद्धतियों को ही धर्म मान बैठे हैं। **परमात्मा कल भी था, परमात्मा आज भी है और परमात्मा कल भी रहेगा।** यानी परमात्मा कोई शरीर नहीं हो सकता। समर्पण ध्यानयोग में परमात्मा यानी वह अज्ञात शक्ति है जो विश्व को चलाती है।

परमात्मा के फोटो की फ्रेम इस पद्धति में खाली रखी गई है। आप किसी को भी परमात्मा मानकर उस फ्रेम में रख सकते हैं। यही कारण है, जब परमात्मा के विभिन्न रूपों को मानने वाले लोग भी ध्यानयोग करते हैं, उन्हें अपने-अपने परमात्मा के दर्शन होते हैं और कुछ माह साधना करने के बाद उनके ही, स्वयं के भीतर परमात्मा के दर्शन होते हैं और बाहर के परमात्मा की खोज ही बंद हो जाती है।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर ही परमात्मा का छोटा सा अंश आत्मा के रूप में है। जब वह जागृत हो जाता है, वह सबसे करीब का परमात्मा लगता है। और फिर एक समाधान प्राप्त होता है कि मैंने परमात्मा को पा लिया। लेकिन यह भीतर का अनुभव तब होता है जब कोई भीतर गया हुआ माध्यम हमारे जीवन में आता है और उसके माध्यम से हमें परमात्मा की अनुभूति होती है।

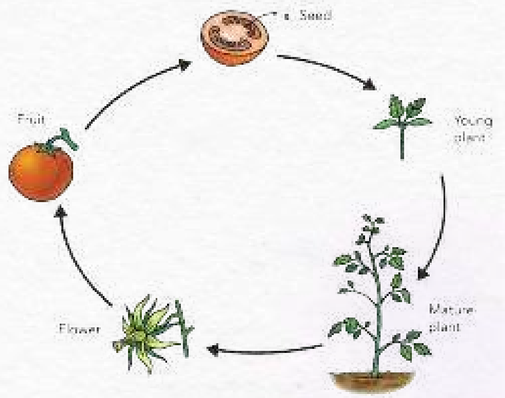

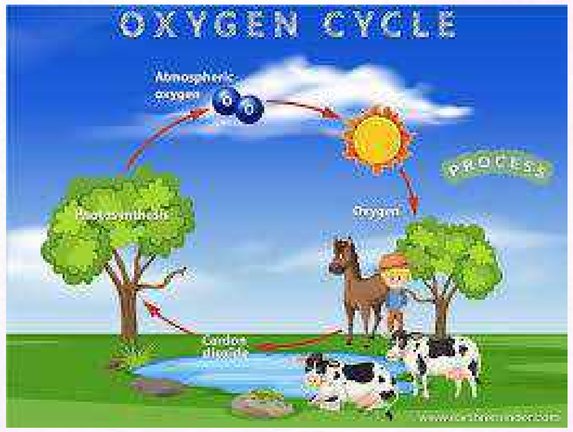

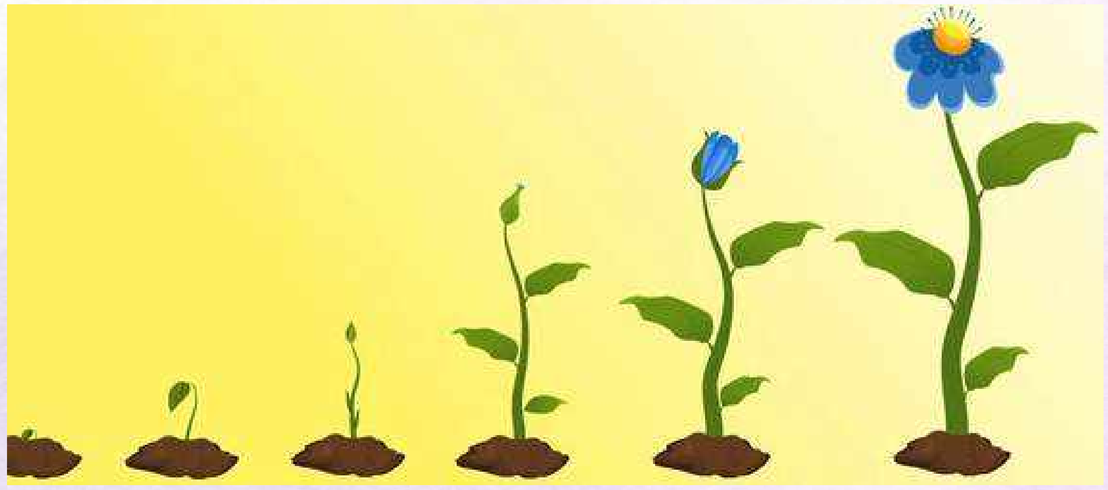

धर्म

हम अपने जीवन में जिसे धर्म समझते हैं, वह एक उपासना पद्धति भर (मात्र) है, वह धर्म नहीं है। **मनुष्य का धर्म तो एक ही है – मानव धर्म।** जिस प्रकार से घोड़े का धर्म है दौड़ना, कुत्ते का धर्म है प्रामाणिकता से रहना, पानी का धर्म है बहना, आग का धर्म है जलना, ठीक वैसे ही, मनुष्य का धर्म है प्रेम करना।

हमारी जितनी उपासना पद्धतियाँ हैं, उन सभी का एक ही उद्देश्य है – **मनुष्यता को जागृत करना।** लेकिन वर्तमान में मनुष्य की अज्ञानता के कारण उन उपासना पद्धतियों के कारण ही लोग आपस में झगड़ रहे हैं और मनुष्यता को ही समाप्त कर रहे हैं।

वास्तव में, सभी उपासना पद्धतियों में एक ही बात कही गई है – अच्छी बातें करो और बुरी बातें छोड़ो। और यह कहने का उदेश्य आपके भीतर के मनुष्यत्व को जगाना है।

मनुष्य बुरा है ही नहीं। जब मनुष्यत्व जागृत हो जाएगा, सारे विश्व में शांति स्थापित हो जाएगी। आज मानवता ही नष्ट हो जाने के कारण विश्व में अशान्ति का वातावरण निर्माण हो गया है और मनुष्य से ही मानवता को खतरा निर्माण हो गया है।

वास्तव में, परमात्मा एक विश्वचेतना है। उसकी अनुभूति प्राप्त करने के लिए ही यह उपासना पद्धतियाँ निर्माण की गई हैं। आप यह समझ लो कि परमात्मा एक मकान है और उस परमात्मा तक पहुँचने के लिए अनेक उपासना पद्धतिरूपी सीढ़ियाँ हैं। सारी सीढ़ियाँ परमात्मा के पास जाकर समाप्त हो जाती हैं।

सभी उपासना पद्धतियों का उद्देश भी एक ही है – परमात्मा को पाना। हर जन्म में मनुष्य अलग-अलग उपासना पद्धति में जन्म लेता है। उपासना पद्धति प्रत्येक जन्म के साथ बदलती है। इसीलिए ऋषि-मुनि उपासना पद्धति को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं।

जो मनुष्य सीढ़ी की बात करता है, वह सीढ़ी पर ही बैठा है, यह समझना चाहिए। क्योंकि जो जहाँ तक पहुँचा है, वह वहीं तक की बात करेगा। जो सत्पुरुष मकान तक पहुँचे हैं, उनका अनुभव है, "सब का मालिक एक है।" परमात्मा एक है यानी मकान तो एक ही है। हाँ, वहाँ तक पहुँचने की सीढ़ियाँ अनेक हैं।

- महर्षि श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

सद्गुरु

सद्गुरु इस ध्यानयोग की पद्धति में माध्यम होते हैं, क्योंकि अनुभूति उनके माध्यम से प्राप्त होती है। जिस प्रकार हम पुस्तक में गाय का चित्र देखते हैं तो हमें गाय के बारे में जानकारी प्राप्त होगी कि गाय के दो सींग होते हैं। गाय सफेद, लाल, काले, पीले रंग की होती है। गाय के चार पैर होते हैं। गाय के दो कान होते हैं। गाय दूध देती है। दूध पीने पर मीठा लगता है। यह सब जानकारी है। यह सब जानकारी हमें पुस्तक से मिल सकती है। और जानकारी से हमें यह लाभ होगा कि कहीं गाय और गधा चर रहे हैं तो हम गाय को पहचान जाते हैं। लेकिन आप इच्छा करो कि चित्र की गाय हमें दूध दे तो वह संभव नहीं है। दूध पीने के लिए जीवंत गाय के पास ही हमें जाना होगा। ठीक उसी प्रकार से, **जीवंत परमात्मा की अनुभूति पाना हो तो हमें परमात्मा के जीवंत माध्यम के पास ही जाना होगा।**

हम सभी में परमात्मा है लेकिन परमात्मा के अलावा कई बातें अनावश्यक हैं। और वह अगर हम हमारे जीवन में दूर करने में सफल हो गए तो परमात्मा की शक्ति हमारे भीतर से भी बहने लगेगी और हम भी परमात्मा के माध्यम बन सकते हैं। सद्गुरु परमात्मा के वे माध्यम होते हैं जो दिखने को तो सामान्य मनुष्य ही दिखते हैं लेकिन वे भीतर से परमात्मामय होते हैं। क्योंकि वे इतने पवित्र और शुद्ध होते हैं कि परमात्मा साक्षात् शक्ति के रूप में उनमें से बहता है और वह बहनेवाली शक्ति चैतन्य के प्रवाह के रूप में अनुभव होती है।

हम सब में ही परमात्मा छुपा हुआ है लेकिन उसके अलावा कई बेकार-सी बातें भी हमारे भीतर हैं। एक शिल्पकार की तरह सद्गुरु हमारे भीतर की अनावश्यक बातों को दूर करता है तो भीतर का परमात्मा प्रगट हो जाता है।

सद्गुरु एक इलेक्ट्रिशियन के समान हमारे जीवन में आते हैं, अगर हम इच्छा करें तो हमारे शरीर रूपी घर का कनेक्शन परमात्मा रूपी पावरहाउस से कर देते हैं और चले जाते हैं। वे चले इसलिए जाते हैं क्योंकि उन्हें और भी घरों में लाइट जलाना है। वे चले जाने के बाद, जिस प्रकार हमें हमारे ही घर के लाइट जलाना होते हैं, ठीक उसी प्रकार से, **अनुभूति प्राप्त करने के बाद हमें ही अपनी नियमित ध्यानयोग साधना करके अपनी स्वयं की प्रगति करना होती है।**

जिस प्रकार से बिना बीज से वृक्ष उगना संभव नहीं है, ठीक उसी प्रकार, **बिना गुरु के आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है। अनुभूतिरूपी बीज जब हमें अपने गुरु से प्राप्त होता है तो ध्यानयोग करके हम हमें प्राप्त बीज को वृक्ष बना सकते हैं।**

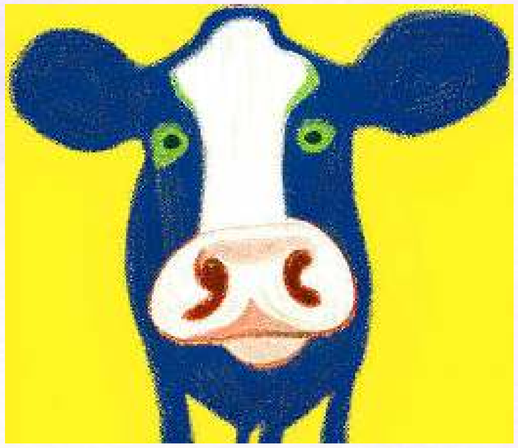

समर्पण ध्यानयोग

सद्गुरु से अनुभूति पाना ही काफी नहीं होता। अनुभूति को प्राप्त करने के बाद उसका अभ्यास भी करना होता है। अनुभूति पाना यानी मेडिकल कॉलेज में केवल एडमिशन पाना भर (मात्र) है। प्रत्येक साधक को अभ्यास करके स्वयं ही डॉक्टर बनना होता है।

प्रत्येक मनुष्य एक गिलास के पानी की तरह जीता है। उसमें अगर थोड़ी-सी भी काली स्याही डाल दो तो पानी काला हो जाता है। यानी मनुष्य के जीवन में थोड़ी भी समस्या आ गई तो मनुष्य संपूर्णत: डिस्टर्व (विचलित) हो जाता है। लेकिन वही मनुष्य अगर समर्पण ध्यानयोग के माध्यम से अपने-आपको अनेक आत्माओं से जोड़ ले तो वह गिलास का पानी नहीं रह जाता है, वह गंगा नदी का पानी हो जाता है। और फिर एक चम्मच काली स्याही उस गंगा नदी के पानी में सफेद नहीं हो जाती लेकिन उस काली स्याही का अस्तित्व नगण्य हो जाता है। यानी जीवन में जो भी समस्या रूपी काली स्याही आती है लेकिन वह जीवन में डिस्टर्ब नहीं कर पाती है क्योंकि पानी की मात्रा बढ़ जाती है। गिलास के पानी से हम गंगा नदी का विशाल पात्र वाला पानी हो जाते हैं।

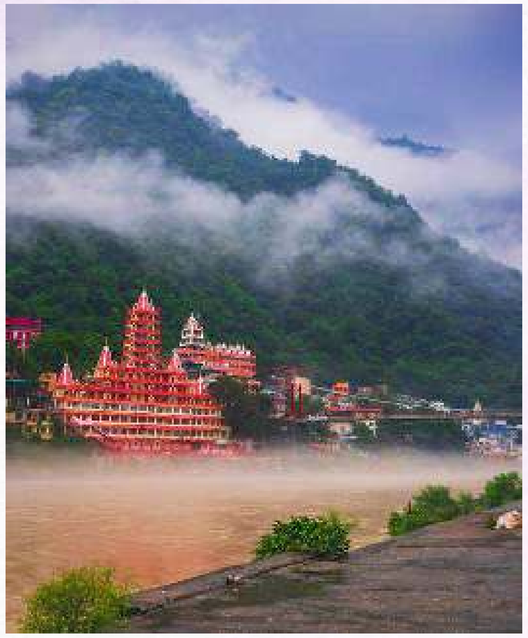

दूसरा, गिलास का पानी स्थिर होता है। उसमें काला रंग दिखता भी है। गंगा नदी के पानी को सतत प्रवाह है, इस कारण वह काला रंग एक क्षण में ही गायब हो जाता है। गंगा नदी के पानी को प्रवाह होता है, वैसे ही हमारी भी स्थिति हो जाती है। जीवन की किसी भी समस्या से हम केवल एक क्षण के लिए ही डिस्टर्ब होते हैं, विचलित होते हैं। एक क्षण यानी बरसात में पानी का बुलबुला उठता है, बस उतना ही हम विचलित होते हैं।

हम अपने आपको क्या समझते हैं, उसी के उपर हमारा जीवन कैसा व्यतीत होगा, वह निर्भर करता है। हम अगर अपने-आपको शरीर समझते हैं तो जीवनभर हम अपने शरीरभाव में ही रहेंगे और एक गिलास का पानी बने रहेंगे और जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं से ही विचलित होकर सदा ही दु:खी रहेंगे। और अगर हम अपने- आपको एक आत्मा समझते हैं तो हमारा आत्मभाव बढ़ेगा। और जैसे ही आत्मभाव बढ़ेगा, शरीरभाव कम हो जाएगा और जैसे ही शरीरभाव कम होगा, हमारे जीवन की समस्याएँ भी कम हो जाएँगी। क्योंकि आत्मा की कोई समस्या ही नहीं होती है, सारी समस्याएँ शरीर की ही होती है। जब आप में शरीरभाव ही नहीं होगा तो समस्याएँ भी नहीं होंगी। इसलिए इस ध्यानयोग की पद्धति में आत्मभाव बढ़ाया जाता है।

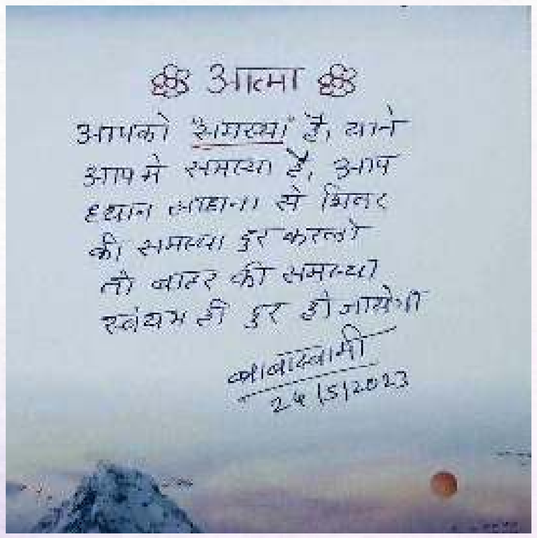

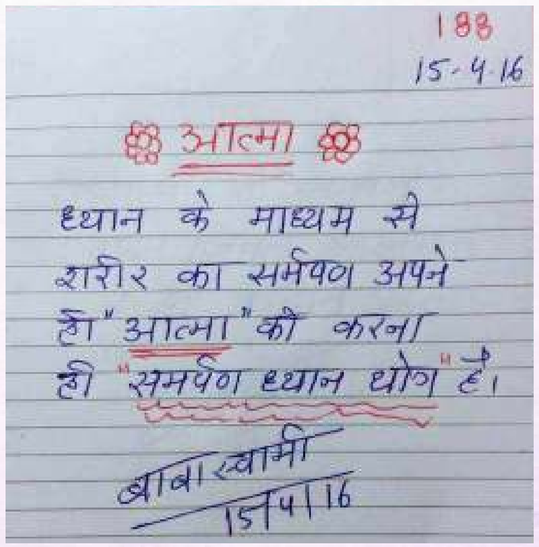

इसी भाव पर ही यह पद्धति आधारित है। इसीलिए इसमें संपूर्ण भाव के साथ हम जो बोल रहे हैं, वह ही मानते हुए एक मंत्र बोला जाता है -

"मैं एक पवित्र आत्मा हूँ, मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ।"

हम जो बोल रहे हैं, साथ-साथ वही अनुभव करना होता है। आप जब बोल रहे होते हैं - मैं एक पवित्र आत्मा हूँ, तब आप मान रहे होते हैं कि आपने अलग-अलग जाति में जन्म लिया फिर भी आपकी पवित्रता बनी हुई है। आपने अलग-अलग भाषाओं में जन्म लिया फिर भी आपकी पवित्रता बनी हुई है। आपने अलग-अलग धर्मों में जन्म लिया फिर भी आपकी पवित्रता बनी हुई है। आपने अलग-अलग देशों में जन्म लिया फिर भी आपकी पवित्रता बनी हुई है। आपने अलग-अलग रंगों के शरीर में जन्म लिया तो भी आपकी पवित्रता बनी हुई है। आपने अलग-अलग लिंग में जन्म लिया तो भी आपकी पवित्रता बनी हुई है। तो आप जान जाते हैं, आत्मा की पवित्रता पर इन सब बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

आप जब बोलते हो - मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ, तब आपने महसूस करना चाहिए कि आप केवल एक शुद्ध आत्मा हैं, आत्मा के अलावा कोई नहीं है। यानी उस क्षण आपको आपका पद, नाम, जाति, धर्म, भाषा, रंग, देश, लिंग कुछ भी याद नहीं होना चाहिए। आप पुरुष हैं या स्त्री हैं, यह भी याद नहीं रहना चाहिए। आप एहसास करें कि आप केवल और केवल आत्मा हैं, एक शुद्ध आत्मा! तो आपको ध्यान की एक अच्छी स्थिति धीरे-धीरे प्राप्त हो जाएगी। उस मंत्र के साथ भाव की आवश्यकता होती है। आप जो बोल रहे हो, वही आप अनुभव कर रहे हो, ऐसा होना चाहिए। यह भाव लाने में आप सफल गए तो **आपके भीतर की आत्मा ही आपकी गुरु हो जाएगी और जीवन में वही मार्गदर्शन करेगी।** और जब आप आपके जीवन में सही निर्णय लेंगे तो उसके सही परिणाम आएँगे और इसी कारण **आप आपके जीवन में एक सफल मनुष्य होंगे।**

आत्मिक प्रगति के लिए प्रयत्न नहीं, समर्पण की आवश्यकता है। समर्पण ही एकमात्र मार्ग है जो आध्यात्मिक प्रगति का द्वार खोलता है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : मधुचैतन्य अप्रैल-मई-जून 2008

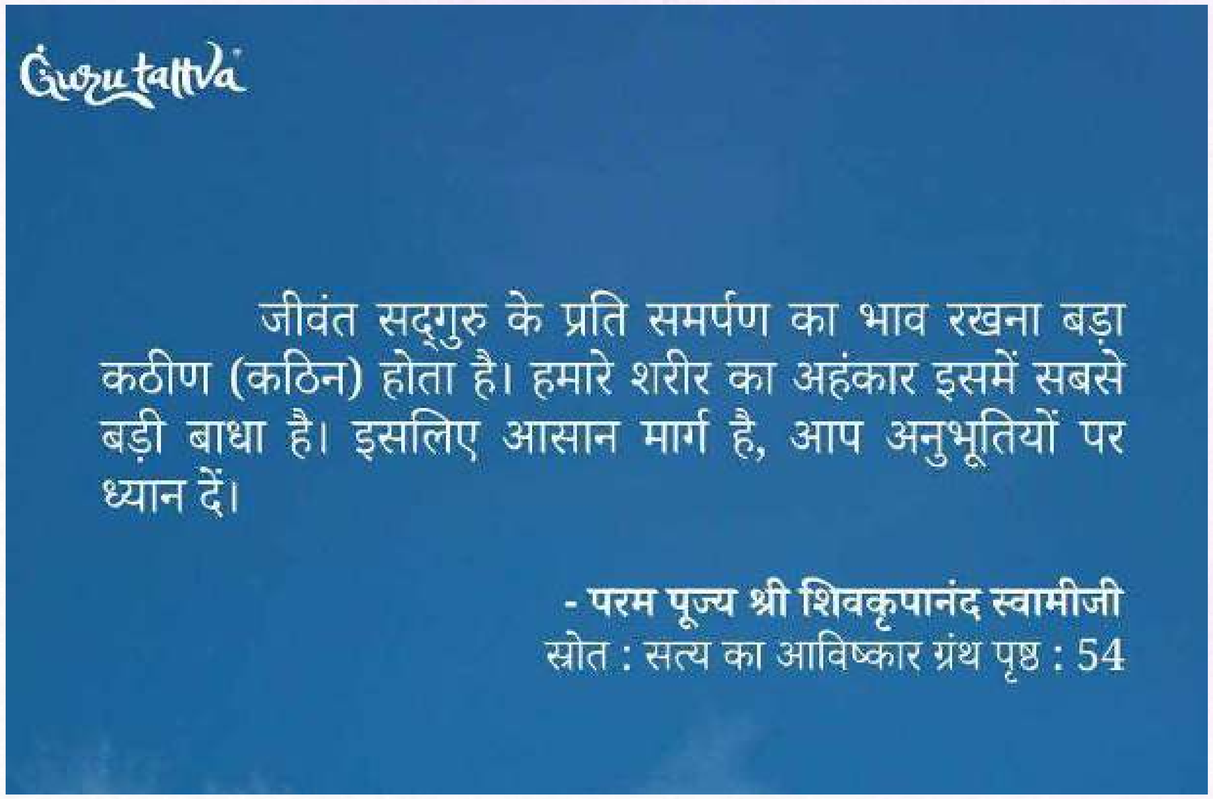

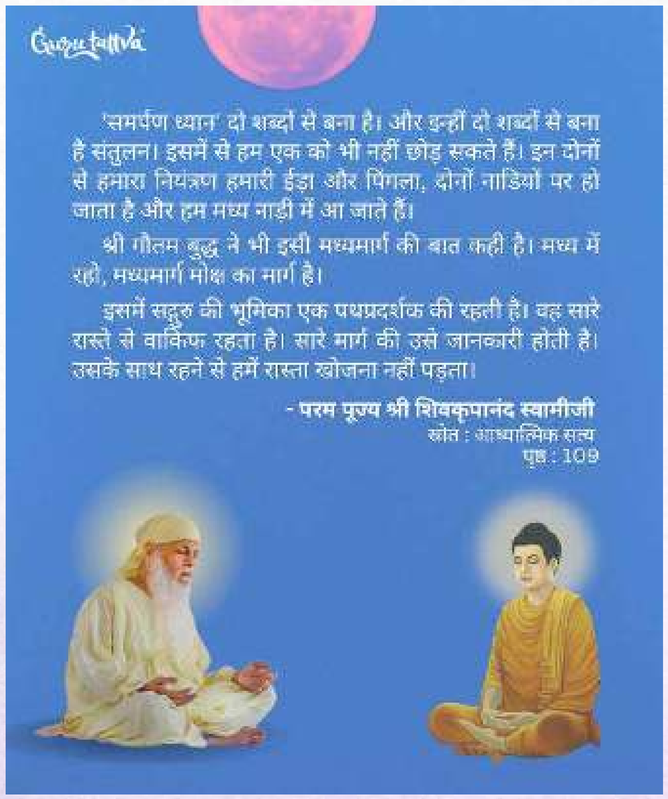

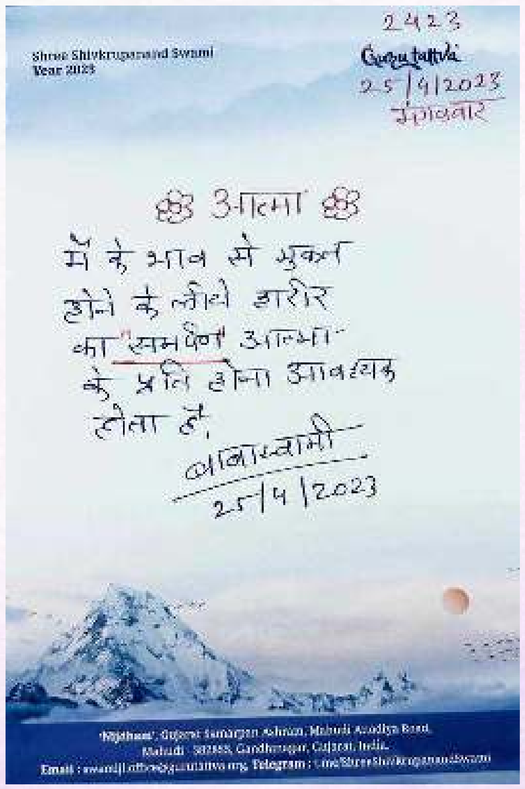

समर्पण ध्यानयोग संस्कार

- प्रगति करना मानव स्वभाव है। जीवन में प्रगति करते समय संतुलित कैसे रहें, यह जानना हो तो 'समर्पण ध्यानयोग' में आपका स्वागत है।
- **'समर्पण ध्यानयोग' अर्थात् समर्पण + ध्यान + योग**
- **'समर्पण' अर्थात् देह का अपनी आत्मा के प्रति समर्पण।**
- **'ध्यान' अर्थात् 30 मिनट के लिए देहभाव से मुक्त होकर आत्मभाव में रहना।**
- **'योग' अर्थात् जोड़ना, ध्यान को जीवन में जोड़ना।**
- 'समर्पण ध्यानयोग' अनुभूति पर आधारित एक बहुत ही सरल ध्यान पद्धति है जिसे किसी भी देश, जाति, धर्म, भाषा, लिंग और रंग का कोई भी व्यक्ति आसानी से अपना सकता है।
- नियमित ध्यान करने से आप आत्मज्ञान प्राप्त करके स्वयं के मार्गदर्शक बन सकते हैं, क्योंकि आत्मज्ञान प्राप्त होने के बाद अच्छे-बुरे का ज्ञान स्वयं ही होने लग जाता है।
- **'समर्पण ध्यानयोग' एक अनुभूतिप्रधान ध्यान संस्कार है,** जिसे अपनाकर आधुनिक युग में सामान्य मनुष्य भी शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति, भौतिक सुख-समाधान एवं अंततः मोक्षप्राप्ति का अंतिम उद्देश्य प्राप्त कर सकता है। जाति, धर्म, भाषा, देश व रंग के भेदों से परे यह ध्यान संस्कार मानव मात्र के लिए प्रशस्त है।
- हिमालय की कंदराओं में ऋषि-मुनियों ने यह ध्यान संस्कार आज के समाज के लिए विकसित किया जिसे सद्गुरू श्री शिवकृपानंद स्वामीजी अपने 40 वर्षों की कठोर साधना एवं अथक परिश्रम से वर्ष 1994 में समाज में लाए हैं तथा इस अमूल्य ज्ञान को पूरे विश्व भर में निःशुल्क प्रदान कर रहे हैं।
- **"संपूर्ण समाधान प्राप्त किए बिना आध्यात्मिक प्रगति संभव ही नहीं है।"**

निर्विचारिता का स्थिति ध्यान नहीं है, निर्विचारिता का स्थिति वह स्थिति है जिसमें से ध्यान में जाया जाता है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : बुद्धपूर्णिमा प्रवच

"आज विश्व में जितनी भी ध्यान की पद्धतियाँ हैं, उन पद्धतियों में या तो सांस पर चित्त रखकर ध्यान किया जाता है या दीये की ज्योति पर चित्त रखकर ध्यान किया जाता है या भस्त्रिका प्राणायाम करके ध्यान किया जाता है। समर्पण ध्यान कोई भी उपरोक्त पद्धति नहीं है। **समर्पण ध्यान कोई ध्यान की पद्धति नहीं है। यह तो एक पवित्र आत्मा द्वारा एक पवित्र आत्मा पर किया गया एक संस्कार है।** बस, यह संस्कार पाने के लिए पवित्र आत्मा होना पड़ता है और परमात्मा के माध्यम द्वारा परमात्मा को पूर्ण समर्पित होना पड़ता है। बस, 'संस्कार' घटित हो जाता है!"

ध्यान तो समर्पण ध्यान संस्कार की पहली पादान है। जैसे आप ये संस्कार ग्रहण करते हैं, इस पादान पर तत्क्षण, उसी क्षण आप पहुँच जाते हैं और एक निर्विचारता का स्थिति आपके जीवन में आ जाता है। लेकिन कई लोग, कई साधु-संत भी निर्विचारता की स्थिति को ही ध्यान समझते हैं। यानी इस ध्यान की स्थिति में जाकर के अटक जाते हैं। **निर्विचारिता का स्थिति ध्यान नहीं है, निर्विचारिता का स्थिति वह स्थिति है जिसमें से ध्यान में जाया जाता है।** और इसके ऊपर की स्थिति है, समाधि। ये समाधि की अवस्था, जैसे ही आप समर्पण ध्यानयोग संस्कार करते हैं, ग्रहण करते हैं उसका अभ्यास करते हैं, उसके प्रैक्टिस करते हैं तो धीरे-धीरे आपको प्राप्त हो जाती है।

मैंने अनुभव किया कि सद्गुरु का शरीर होता है, पर शरीर का अस्तित्व नहीं होता है। इस कारण हम जितना उसके प्रति समर्पण करते हैं, हमारा समर्पण हमारे ही आत्मा के प्रति होने लगता है।

और इस प्रकार हम सद्गुरु के माध्यम से अपने ही शरीर का समर्पण अपनी ही आत्मा के प्रति कर पाते हैं और जब पूर्ण समर्पण हो जाता है तो शरीरभाव पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सत्य का आविष्कार ग्रंथ पृष्ठ : 54

साधना

मंत्र बोलकर नियमित कम-से-कम आधा घण्टा साधना करना आवश्यक होता है। **साधना नियमित करना आवश्यक है।**

साधना करते समय आपके आसपास १५-२० फीट में कोई भी मनुष्य नहीं होना चाहिए। पति के पास उसकी पत्नी या पत्नी के पास उसका पति भी नहीं होना चाहिए। ऐसा अभ्यास करोगे तो आपका आभामण्डल धीरे-धीरे विकसित होगा और वही आपको दूसरों के विचारों से सुरक्षित रखेगा।

आप आपकी आत्मा के जितने करीब जाओगे, आपका आभामण्डल शरीर के आसपास उतना ही विकसित होगा।

इस साधना को कम-से-कम ३० मिनिट करना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि पहले २० मिनट हमें हमारे शरीर का ही विरोध सहन करना पड़ता है। क्योंकि शरीर के भीतर एक यंत्रणा होती है। जब शरीर सक्रिय होता है, मन निष्क्रिय होता है और मन सक्रिय होता है, तब शरीर निष्क्रिय होता है।

इस प्रक्रिया से हटकर जब हम ध्यानयोग करेंगे तो शरीर का तो विरोध होगा ही क्योंकि आप शरीर और मन दोनों को एक साथ निष्क्रिय करने का प्रयास कर रहे हैं और यह शरीर की व्यवस्था के विरोध में है। तो पहले २० मिनट तक शरीर और मन दोनों का विरोध सहन करना पड़ता है।

यानी पहले २० मिनिट में बहुत विचार आएँगे और बाद में बुद्धि हमें मूर्ख बनाकर उठाने का प्रयास करती है और कितने आवश्यक काम पड़े हैं, वह याद दिलाती है। वास्तव में, काम आवश्यक नहीं होते, 'बुद्धि' उसके बहाने आपको ध्यानयोग से उठाना चाहती है। इन सबका विरोध प्रथम २० मिनट में ही होता है।

यह विरोध प्रथम तो शरीर करता है, यानी शरीर में खुजली होना, खाँसी आना, गैस निकलना आदि। बाद में मन में विचार आना प्रारंभ होता है। यह सब अगर हमने सहन कर लिया तो बाद में ध्यानयोग होता है।

इसके लिए हमें एक संकल्प करके ही बैठना चाहिए कि हम ३० मिनट बैठेंगे ही। ध्यान लगे या न लगे और ध्यान लगे इस अपेक्षा के साथ भी ध्यान करने न बैठें।

नियमित ध्यान साधना का प्रभाव

ध्यान करने से दो प्रकार की घटनाएँ घटती है।

- **प्रथम तो खराब विचारों से शरीर के आसपास जो खराब ऊर्जा निर्मित हुई रहती है, वह इकट्ठा होना बंद हो जाती है।** और फिर जो खराब ऊर्जा जमा है वह भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।

- **दूसरा प्रभाव यह होता है, संपूर्ण खराब ऊर्जा समाप्त होने के बाद अच्छी, पवित्र, सकारात्मक ऊर्जा निर्मित होनी शुरू होती है।** और धीरे-धीरे वह सकारात्मक, अच्छी ऊर्जा इकट्ठा होकर अपने शरीर के आसपास अच्छी ऊर्जा का आभामंडल-सा बना देती है। और वह आभामंडल बन जाने के बाद नकारात्मक विचार नहीं आते हैं। और शरीर कहीं भी रहे, खराब सामूहिकता में रहे, खराब दूषित ऊर्जा वाले स्थान पर रहे, उस बुरी सामूहिकता का, उस बुरे स्थान का प्रभाव हम तक पहुँच ही नहीं पाता है। इस प्रकार मनुष्य बुरे प्रभाव से सदैव बचा रहता है।

(संदर्भ : हिमालय का समर्पण योग भाग 1)

नियमित ध्यान साधना से हमारे चक्र, नाडियाँ, आभामंडल का शुद्धिकरण होना शुरू होता है और धीरे-धीरे हमारी अंतर्यात्रा हमें आत्मिक विकास की ओर ले जाती है।

अष्टांग योग

यम यानी.. हमारी बुरी बातों को, हमारे बुरे कर्मों को त्याग करना, बुरे कर्मों को छोड़ना। अब यहाँ प्रश्न आता है - कर्म कौन करता है ? आत्मा कर्म करती है क्या? नहीं, कर्म शरीर के द्वारा किए जाते हैं। यानी ये भी विचार, ये भी पादान शरीरभाव से संबंधित है कि कर्मों का त्याग करना, बुरे कर्मों का त्याग करना, ये यम।

नियम यानी अच्छे कर्मों को करना, उसका एक नियम बनाना कि मैं अच्छे कर्म करूँगा या अच्छे कर्म मैं करूँगी, ये नियम बनाना। अच्छे नियमों का पालन करना, अच्छे कर्मों को करने के लिए नियम बनाना। लेकिन फिर वहाँ पे भी 'मैं' है ना, कि मुझे अच्छे कर्म करने का है, अच्छे कर्मों के साथ अपने-आपको जोड़ने का है। तो फिर वहाँ पे शरीरभाव विद्यमान है ही।

आसन यानी, शरीर को स्वस्थ रखने के लिए किए जाने वाली क्रियाएँ। क्या उद्देश्य है? आप उद्देश्य को देखो। आसन का उद्देश्य है, शरीर को स्वस्थ रखना; यानी फिर शरीर आ गया और जहाँ शरीर आ गया वहाँ शरीरभाव आ गया। तो यहाँ पे भी शरीर भाव है, यहाँ पे भी शरीर है।

प्राणायाम यानी, श्वास और प्रश्वास जो हम ले रहे हैं उनको संतुलित करना, उनको बॅलेन्स करना। श्वास कौन ले रहा है ? शरीर! श्वास कौन छोड़ रहा है ? शरीर! श्वास पे चित्त कौन रख रहा है? मैं! मैं साँस पे चित्त रख रही हूँ, मैं साँस पे चित्त रख रहा हूँ, मैं साँस नियंत्रित कर रहा हूँ। यानी 'मैं' यहाँ पे भी विद्यमान है और जहाँ पे 'मैं' विद्यमान है, वहाँ पे शरीरभाव आया ही ना!

प्रत्याहार यानी, मैंने मेरे जीवन में जो बुरी आदतें अपनाई हुई हैं, जो बुरे कर्म मेरे हाथ से हो रहे हैं उनका त्याग करना। तो आदतें किसने अपनाई हैं ? शरीर ने! बुरे कर्म कौन कर रहा है? शरीर! तो उनका त्याग करना यानी फिर शरीर का संबंध तो आया ही ना! तो शरीर का संबंध आया तो शरीरभाव आया और यहाँ पे भी 'मैं' विद्यमान है ही ना, शरीर का भाव है ही।

धारणा है अपने मन को धीरे-धीरे, धीरे-धीरे किसी एक माध्यम पे, किसी एक स्थान पे, किसी एक बिंदु पे अपने मन को एकाग्र करना, धारणा है। अपने चित्त को, मन को एकाग्र करना धीरे- धीरे धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे.. लेकिन यहाँ पे भी जहाँ करना आया, वहाँ कर्ता आया और जहाँ कर्ता आया वहाँ शरीरभाव आया और जहाँ शरीरभाव आया वहाँ योग नहीं है। तो यहाँ पे भी कर्ता का भाव है।

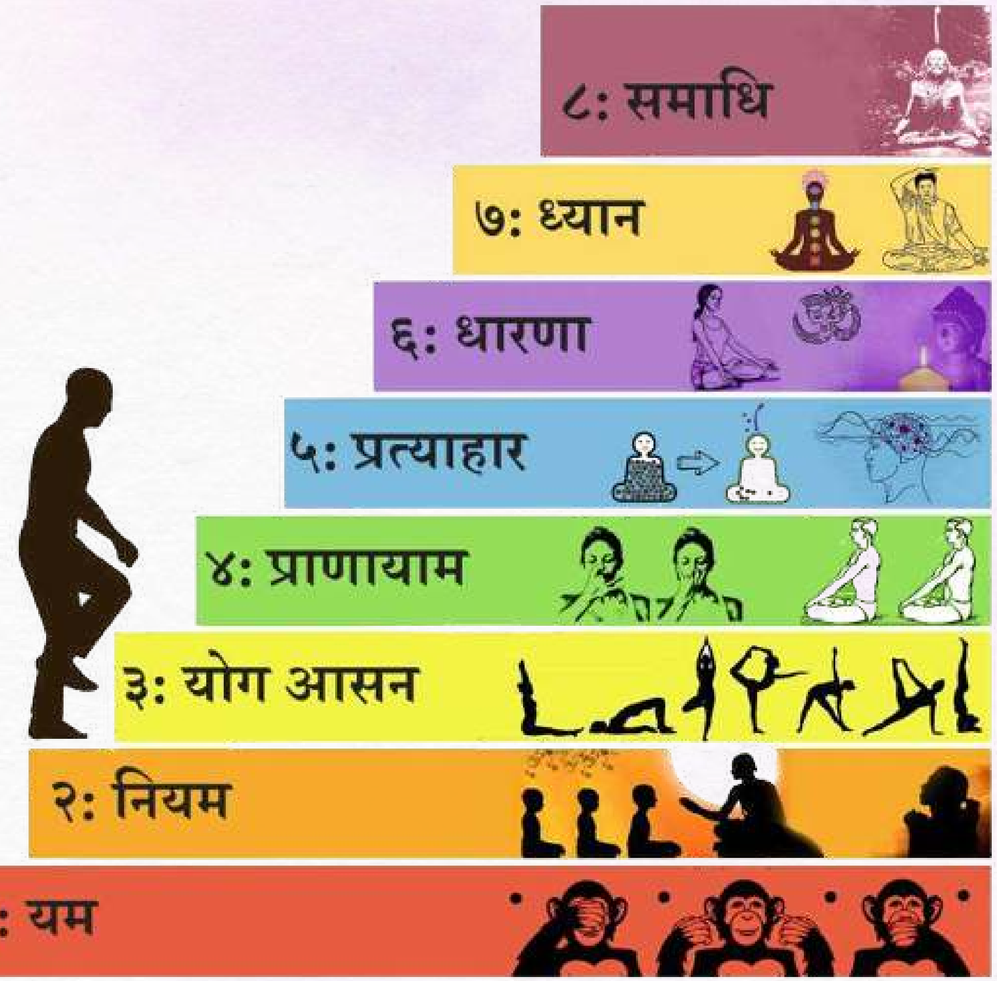

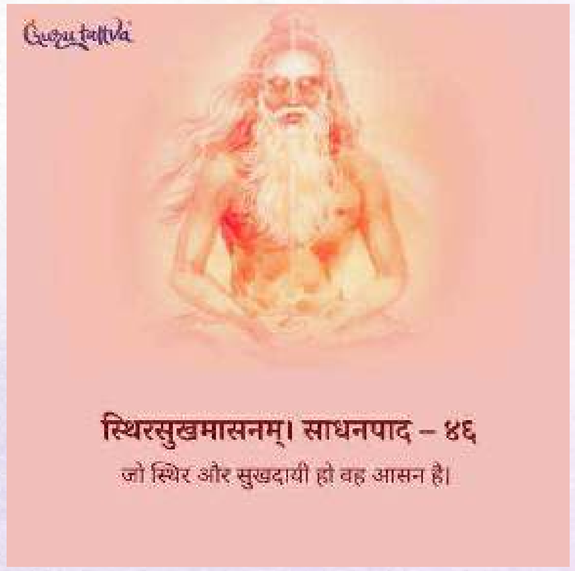

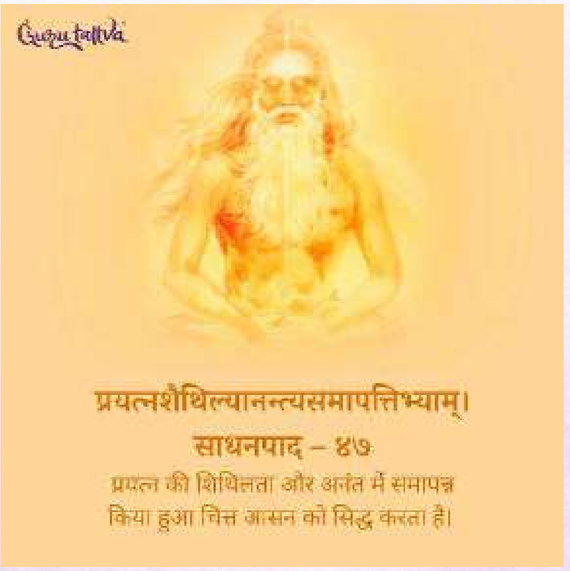

और इसके बाद धारणा के ऊपर अगर हम जाते हैं तो ध्यान। यानी मन को एकाग्र करना, चित्त - को एकाग्र करना और फिर लग जाए, अगर निर्विचार स्थिति प्राप्त हो जाए, अगर शून्य की स्थिति प्राप्त हो जाए तो ध्यान! यानी ध्यान भी करना है। ये सब होने के बाद में कर्ता का भाव है, यहाँ पे भी पूर्णत्व नहीं है। और इसके भी ऊपर की स्थिति है - **समाधि** । **तो समर्पण ध्यान संस्कार एक ऐसा संस्कार है जिसके माध्यम से आपको सीधी-सीधी समाधि ही प्राप्त हो जाती है।**

जैसे ही आप समग्र योग करने लग जाते हैं, आपके भीतर का योग पुनः प्रारंभ हो जाता है, ये सभी पादानों के लाभ आपको अनायास ही मिलना प्रारंभ हो जाते हैं।

जैसे **यम** यानी बुरे कार्य को छोड़ना, वो ऑटोमॅटिकली आपके हाथ से बुरे कार्य छूटना चालू हो जाते हैं।

दूसरा **नियम**, अच्छे कार्यों को करना, तो ऑटोमॅटिकली आपके हाथ से अच्छे कार्य घटित होना चालू.. करते नहीं है.. करते नहीं है यहाँ, आपके हाथ से होना चालू हो जाते हैं!

उसके बाद में तीसरा है **आसन**, शरीर को स्वस्थ रखना; आपका शरीर स्वस्थ रहना, ऑटोमॅटीकली होना चालू हो जाता है; करना नहीं पड़ता है।

तो उसके बाद में **प्राणायामः** प्राणायाम भी आप साँस के ऊपर चित्त रखते नहीं है, ऑटोमॅटिकली आपकी साँस अनायास ही नियंत्रित होना प्रारंभ हो जाती है।

उसके ऊपर आते हैं, **प्रत्याहार**, बुरे व्यसनों को छोड़ना; यहाँ छोड़ना नहीं पड़ता है, ऑटोमॅटिकली छूट जाते हैं। जैसे ही आप समग्र योग करते हैं, प्रत्याहार ऑटोमॅटिक घटित हो जाता है; करते नहीं हैं, हो जाता है। यहाँ कर्ता का भाव नहीं है।

और रही बात **धारणा** की, तो धारणा खुद-ब-खुद कुछ दिन अभ्यास करके ही सहजता से प्राप्त की जा सकती है।

और **ध्यान**, ध्यान तो समर्पण ध्यान संस्कार की पहली पादान है। जैसे आप ये संस्कार ग्रहण करते हैं। इस पादान पे तत्क्षण, उसी क्षण आप पहुँच जाते हैं और एक निर्विचारिता का स्थिति आपके जीवन में आ जाता है।

और इसके भी ऊपर की स्थिति है **समाधि।** ये समाधि की अवस्था, जैसे ही आप समर्पण ध्यानयोग संस्कार ग्रहण करते हैं, उसका अभ्यास करते हैं, उसकी प्रेक्टिस करते हैं, तो धीरे-धीरे आपको प्राप्त हो जाती है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी स्रोत : बुद्धपूर्णिमा प्रवचन

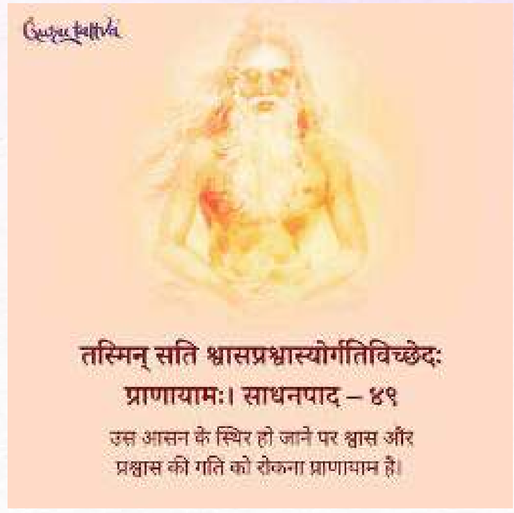

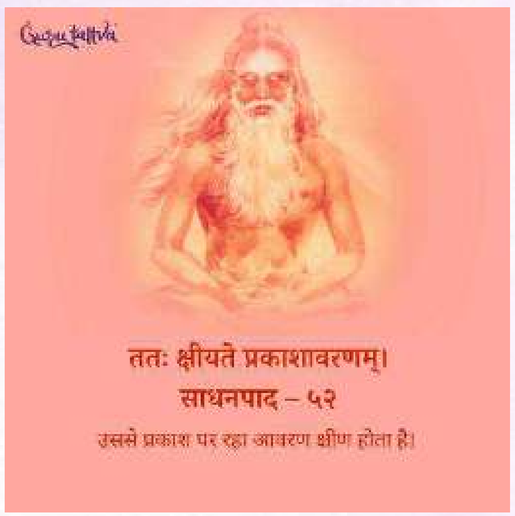

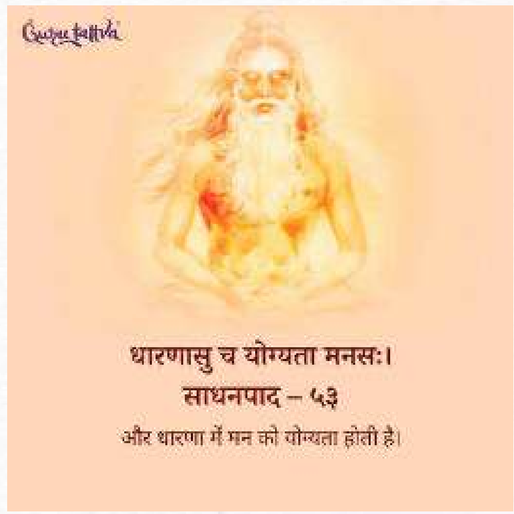

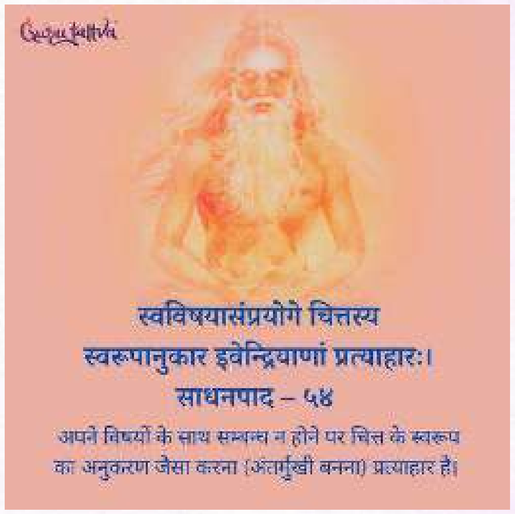

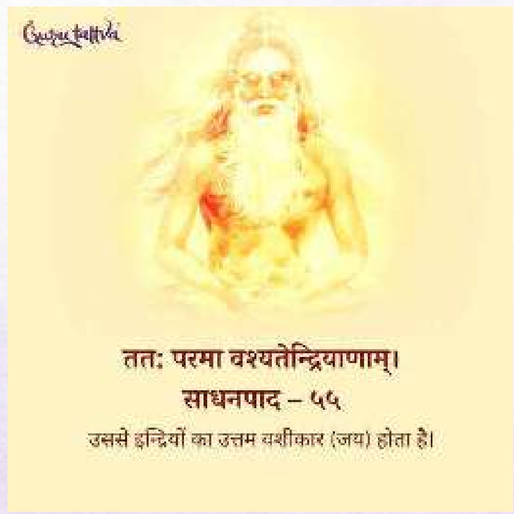

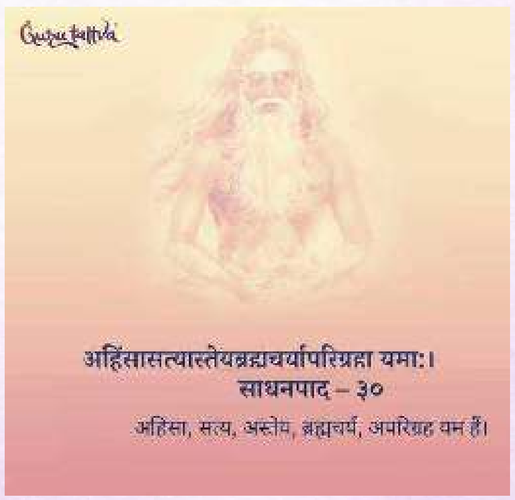

यम

1. अहिंसा

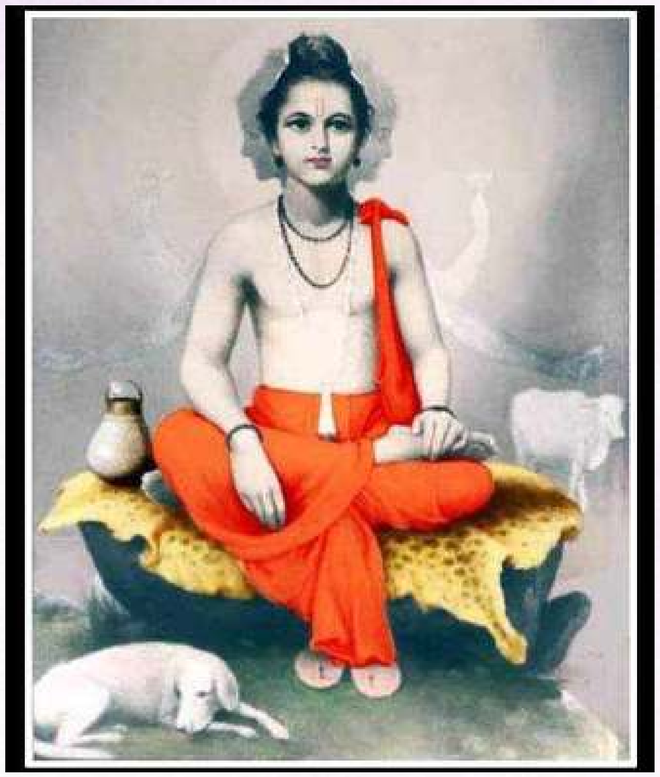

जब कोई एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हत्या करता हो, तब दोनों मनुष्य मरते हैं। एक देह से मरता है और दूसरा आत्मा से। जो देह से मरता है, वह तो छूट जाता है। पर जो आत्मा से मरता है, उसकी स्थिति देह से मरनेवाले से भी बदतर है, क्योंकि वह अपनी खुद की नजरों से मर जाता है। उसे आत्मग्लानि होती है, वह अपनी नजरों से गिर जाता है और वह कभी भी ऊपर नहीं उठ पाता है। जो मर गया, वह तो फिर से जन्म लेकर नया देह प्राप्त कर लेता है। इसलिए आप अपने जीवन में जानबूझकर कोई छोटी से छोटी चींटी की भी हत्या मत करो, क्योंकि कहीं न कहीं आप उस मनुष्य धर्म के विरोध में कार्य करते हो। **मनुष्य धर्म का मुख्य गुणधर्म है प्रेम, न कि हिंसा।** आप जीवन में अपने द्वारा किसी भी जीव की हिंसा होने से बचो।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : मधुचैतन्य अप्रैल-मई-जून २००३

अहिंसा बड़ा व्यापक शब्द है। हमारे द्वारा किसी भी प्राणी को जाने-अनजाने में भी कोई दुःख न पहुँचाया जाए। इसी तरह गलत शब्दों का प्रयोग या शब्द के द्वारा किसी को दुःखी करना, आँखों से अपमानित कर किसी को आहत करना, व्यंग्यात्मक बोल कर किसी को दुःखी करना, सब एक प्रकार की हिंसा ही होती हैं। हम जब किसी को दुःखी करते हैं, तब हम हमारे स्वभाव के विरोध में कार्य करते हैं। **आध्यात्मिक प्रगति में देखा जाता है, आपसे कितने लोग प्रसन्न हैं, आप कितने लोगों को सुख दे सकते हो, आप कितने लोगों को प्रेम देते हो।** इनसे ही आध्यात्मिक प्रगति होती है और ये सब अपने हृदय से, भीतर से होना चाहिए।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत: हिमालय का समर्पण योग, भाग १ - पेज ५९

मनुष्य की आध्यात्मिक स्थिति जैसे-जैसे विकसित होती है, वैसे-वैसे इस अहिंसा का दायरा भी बढ़ते जाता है। पहले अहिंसा के दायरे में - कोई भी शारीरिक हिंसा न करना होता है, लेकिन अहिंसा के विस्तृत दायरे में वैचारिक स्वरूप भी आ जाता है। तुम्हारे द्वारा किसी भी व्यक्ति को दुःखी करना भी हिंसा के दायरे में आता है। तुम्हारे द्वारा जाने-अनजाने में कोई ऐसे शब्द निकल जाए जिससे कोई आहत हो, वह हिंसा है। इसे शाब्दिक हिंसा कह सकते है। और यह **शाब्दिक हिंसा तो शारीरिक हिंसा से भी अधिक घातक सिद्ध होती है।** कई बार कोई व्यक्ति हमारे विचारों से, हमारी बातों से इतना घायल होता है कि वह जन्मभर घायल ही रहता है। तो यह तो बड़ा ही घातक है क्योंकि उसके शरीर पर किया गया घाव भर जाएगा पर उसके मन पर किया गया घाव कभी नहीं भरेगा और उस घाव से वह जन्मभर दुःखी होगा। यह एक बड़ी हिंसा ही है। इसलिए **अहिंसा को बड़े विशाल स्तर पर ग्रहण करना चाहिए।**

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत -हिमालय का समर्पण योग, भाग १ - पेज ३२४

2. सत्य

सत्य बोलना आत्मा का मूल स्वभाव है। जिसका शरीर स्तर के ऊपर कार्य चल रहा है वो ही झूठ बोल सकता है, आत्मिक स्तर के ऊपर झूठ बोला ही नहीं जाएगा, बोलते ही नहीं आएगा। हम न, हमारे स्तर पर कार्य करते हैं, शरीर के स्तर पर कार्य करते हैं। तो शरीर के स्तर पर कार्य करेंगे वो, और आत्मा के स्तर पर जो कार्य होगा वो, उसमें जमीन-आसमान का अंतर है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी स्रोत: महाशिवरात्रि प्रवचन २०१

"मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ " , यहाँ शुद्ध का अर्थ 'सत्य' से है।

आप यह पूर्णत: मान रहे हैं कि आप एक 'आत्मा' हैं। यही एकमात्र 'सत्य' है। इसीलिए जब कभी आप 'सत्य' बोलते हैं तो "सत्य का चैतन्य" आपके मुख से निकलता है।

सदैव 'सत्य' बोलनेवालों की वाणी में एक प्रकार की शक्ति निर्मित हो जाती है। फिर उनके मुँह से जो भी निकलता है, शक्तियाँ उसे सत्य करती हैं।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

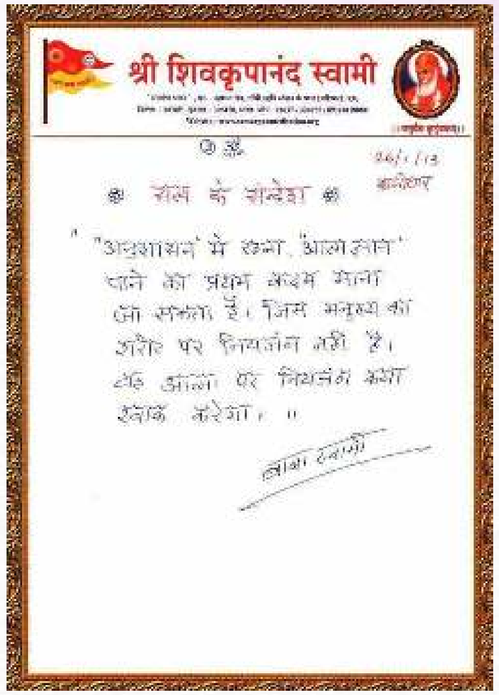

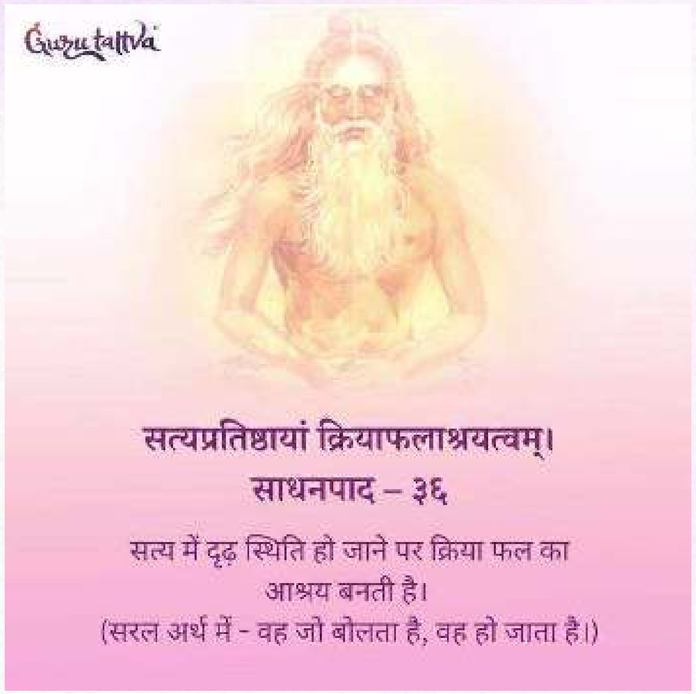

3.अस्तेय

पुराने समय की कुछ बाते सुनी हैं। कहते हैं प्राचीन काल में स्वयं को मोक्ष प्राप्ति हो इस हेतु से राजा घोषणा करते थे - क्या कोई है जो मेरे कर्म दान में ले ले? जो कोई राजा के सभी कर्म दान स्वरुप ग्रहण करेगा उसे बहुमूल्य उपहार दिए जाएँगे। कुछ गरीब लोग राजा से उसके कर्म दान में लेने को आते थे। राजा उनमें से किसी एक को कर्म दान करते थे। कर्मों का दान हो सकता है या नहीं , ये अलग विषय है। मोक्ष का अर्थ है कर्ममुक्त.. भावमुक्त अवस्था ! अब इस दृष्टिकोण से सोचकर देखिए - जो कर्म किसी और ने किया तथा कोई अन्य व्यक्ति उस कार्य का श्रेय लेता है तब दो घटनाएँ होती है -

१. जिसने कार्य किया ही नहीं वह एक कर्म अपने खाते में चढ़ा लेता है।
२. आपने किसी का श्रेय छीना है... चुराया है ये बात आपकी आत्मा जानती है , इसलिए आपको सतत अपराध बोध रहता है और इससे विशुद्धि चक्र दूषित होता है।

यदि गुरुकार्य करने वाले के दृष्टिकोण से सोचें तो वह तो गुरुकार्य कर रहा था। गुरुकार्य अर्थात आत्मा द्वारा गुरु के लिए किया गया कार्य। इसलिए वैसे भी देह किसी भी कार्य को करने का श्रेय नहीं लेती , तभी तो वह गुरुकार्य होता है। तो जिस कार्य को करने का श्रेय देह को लेना ही नहीं था वह श्रेय कोई भी ले , क्या फर्क पड़ता है? राजा को तो निवेदन करना पड़ता था - मेरे कर्म ले लो। यहाँ तो बिना निवेदन ही आप कर्ममुक्त हो सकते हैं। मोक्ष की ओर एक कदम आगे बढ़ जाओगे।

इतनी गहराई से समझना कठिन लगता हो तो आसान सिद्धांत समझ लें.. कर्म का सिद्धांत ! योग और भोग का सिद्धांत..! सुना है पूर्व जन्म के कर्म हमें इस जन्म में भोगने होते हैं। उन कर्मों के कारण श्रेय मिलने का योग नहीं होगा.. कुछ भोग भोगने बाकी होंगे। हम सब मोक्ष मार्ग के पथिक हैं। हमें अच्छा लगता है इसलिए कार्य करना चाहिए, श्रेय के लिए नहीं। यदि कोई भी हमें सहायता करे तो उसका श्रेय.. धन्यवाद उसे अवश्य दें। **सभी को कार्य करने का मौका दें। आवश्यक पड़ने पर उसे मार्गदर्शन दें , सहायता करें, पर कार्य का संपूर्ण यश उसी को दें। स्मरण रहे, मोक्ष का अर्थ देकर.. बाँटकर रिक्त होना है.. खाली होना है।**

(स्रोत : मधुचैतन्य : नवंबर-दिसंबर २०२०)

एक बार एक महात्माजी देशाटन पे निकले। जब वो अलग-अलग गाँव में जाते थे, अलग अलग तीर्थक्षेत्र पर जाते थे; ऐसे घूमते-घूमते वे जब एक तीर्थक्षेत्र पर पहुँचे तब उस तीर्थक्षेत्र पे एक चोर स्वामीजी के सान्निध्य में आया। स्वामीजी का सान्निध्य पाकर चोर को भी कुछ आकर्षण लगा, कुछ अनुभूति हुई। वह भी उनके साथ हो लिये। दोनों साथ-साथ चल रहे थे और चोर को स्वामीजी का सान्निध्य रास आ गया। और उसने चोरियाँ छोड़कर स्वामीजी के साथ रहने का निश्चय किया।

जब सारा देशाटन करने के बाद स्वामीजी जब अपने आश्रम में पहुँचे तो ये चोर भी उनके साथ आश्रम में गया और स्वामीजी के साथ आश्रम में रहने लग गया। यानी अच्छे सान्निध्य का, अच्छे संगत का, अच्छे चैतन्य का, अच्छे वाईब्रेशन का प्रभाव जब पशु-पक्षियों पर पड़ता है, पत्थरों पर पड़ता है, वृक्ष पर पड़ता है तो कोई अचरज नहीं है कि एक चोर पर पड़ा।

लेकिन यह चोर आश्रम में रहने के बाद आश्रमवासियों को एक नई अनुभूति हुई, एक नया अनुभव आया। अनुभव यह आया कि कभी किसी की घड़ी गायब हो जाती थी और वह किसी और की बेग में मिलती थी। कभी किसी के पैसे गायब हो जाते थे, वह किसी और के बेग में मिलते थे। कभी किसी के जेवर गायब हो जाते थे, तो और किसी की पेटी में मिलते थे। ऐसी बहुमूल्य वस्तुएँ आश्रमवासियों की गायब हो जाती थी और दूसरे अन्य के सामान के अंदर मिलते थे।

एक बार हुआ, दो बार हुआ, तीन बार हुआ। जब ये बार-बार होने लग गया, तो आश्रमवासियों ने स्वामीजी से शिकायत की - जबसे आप आए हो और आपके साथ ये नया साधक आया हुआ है, तबसे वस्तुएँ इधर की उधर, उधर की इधर हो जाती हैं। क्या कारण हैं, मालूम नहीं है।

स्वामीजी ने उसे एकांत में बुलाया। उसे पूछा कि तूने तीर्थस्थान के ऊपर जब चोरियाँ त्यागने का निश्चय किया था, चोरी न करने का निश्चय किया था। लेकिन अभी भी तेरी वो आदत नहीं छुटी है। तू अभी भी चोरियाँ कर रहा है।

बोला, "स्वामीजी, कहाँ चोरियाँ कर रहा हूँ? इधर से लेता हूँ और उधर रख देता हूँ, उधर से लेता हूँ. इधर रख देता हूँ। मैं कहाँ लेता हूँ? देखो! मेरी जेब में कुछ भी नहीं है।" उन्होंने कहा, "अरे बाबा! तू लेता नहीं है, लेकिन उघर का उघर तो करता है ना! तो उस चोरी की आदतों से बाज तो नहीं आया है, अभी भी वह आदत तेरी है ही।"

Guru tattva

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

साधनपाद – ३७

अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है।

धीरे-धीरे स्वामीजी ने उसको समझाया कि इधर से उधर करना और उधर से इधर करना भी चोरी के दायरे में आता है। **क्यों इन नाशवान चीजों पर चित्त डालता है? ये चीजें तेरी हैं ही नहीं। वो चीजें तू क्यों एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में अपनी ऊर्जा को नष्ट करता है, अपने चित्त को नष्ट करता है? उसी चित्त को ध्यान में लगा। जो ऊर्जा वस्तुओं का आदान-प्रदान करने में खर्च कर रहा है, वहीं ऊर्जा भीतर के शक्ति को आदान-प्रदान करने में खर्च कर।**

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

स्रोत : मधुचैतन्य जनवरी-फरवरी-मार्च, 2006

4. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य यानी आप जो अर्थ लगा रहे हैं, वैसे शारीरिक ब्रह्मचर्य का अर्थ ब्रह्मचारी नहीं है। ब्रह्मचारी यानी ब्रह्म के अनुसार आचरण करनेवाला व्यक्ति!
आप ब्रह्मचर्य का अर्थ लगाते हैं - शारीरिक रूप से ब्रह्मचारी रहनेवाला व्यक्ति। इन दोनों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। एक महाभारत की कथा आपको बताता हूँ। ब्रह्मास्त्र चलाने के लिये ब्रह्मचारी की आवश्यकता थी। ब्रह्मास्त्र वापस लेनेके लिए भी ब्रह्मचारी की आवश्यकता थी।अर्जुन भी ब्रह्मास्त्र चला सकता था और अर्जुन वो ब्रह्मास्त्र को वापस भी ले सकता था, जब कि अर्जुन ब्रह्मचारी नहीं था, जिसे आप ब्रह्मचारि समज रहे हैं और अश्वत्थामा, आप जैसा ब्रह्मचारी समझ रहे हैं वैसा ब्रह्मचारी था। लेकिन वो ब्रह्मास्त्र को चला सकता था, ब्रह्मास्त्र को वापस लेने की शक्ति अश्वत्थामा में नहीं थी, क्या कारण है?

कोई शरीर से ब्रह्मचारी हो तो आवश्यक नहीं कि वो चित्त से ब्रह्मचारी होगा ही। चित्त से ब्रह्मचारी होने की आवश्यकता है और जब तक चित्त से ब्रह्मचारी नहीं होते, शरीर से ब्रह्मचारी होके कोई मायना नहीं है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : नवसारी महाशिविर दिवस -6

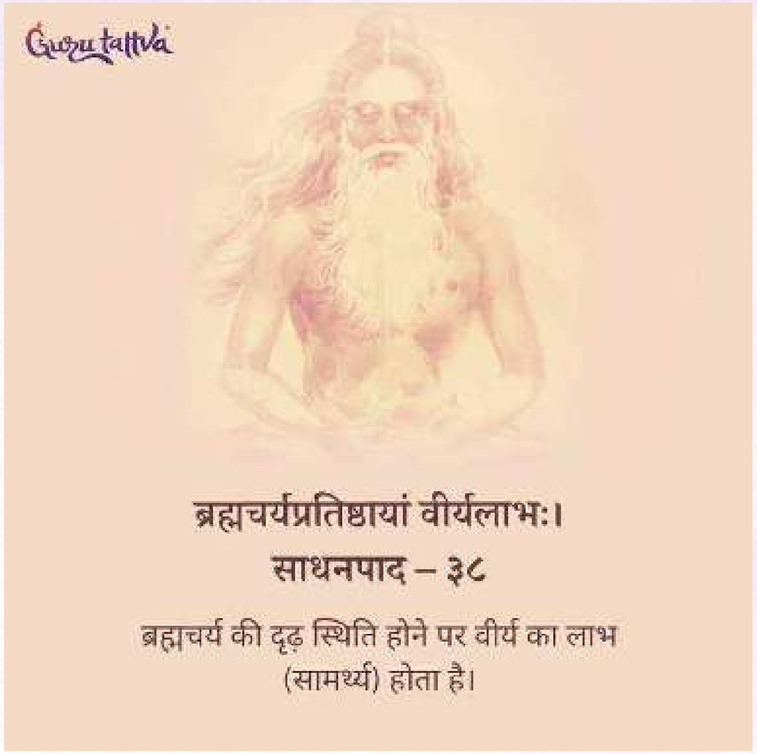

5. अपरिग्रह

मोक्ष का अर्थ है कर्ममुक्त.. भावमुक्त अवस्था ! अब इस दृष्टिकोण से सोचकर देखिए - जो कर्म किसी और ने किया तथा कोई अन्य व्यक्ति उस कार्य का श्रेय लेता है तब दो घटनाएँ होती है -
१. जिसने कार्य किया ही नहीं वह एक कर्म अपने खाते में चढ़ा लेता है।
२. आपने किसी का श्रेय छीना है... चुराया है ये बात आपकी आत्मा जानती है, इसलिए आपको सतत अपराध बोध रहता है और इससे विशुद्धि चक्र दूषित होता है।

यदि गुरुकार्य करने वाले के दृष्टिकोण से सोचें तो वह तो गुरुकार्य कर रहा था। गुरुकार्य अर्थात आत्मा द्वारा गुरु के लिए किया गया कार्य। इसलिए वैसे भी देह किसी भी कार्य को करने का श्रेय नहीं लेती, तभी तो वह गुरुकार्य होता है। तो जिस कार्य को करने का श्रेय देह को लेना ही नहीं था वह श्रेय कोई भी ले , क्या फर्क पड़ता है?

हम सब मोक्ष मार्ग के पथिक हैं। हमें अच्छा लगता है इसलिए कार्य करना चाहिए, श्रेय के लिए नहीं। यदि कोई भी हमें सहायता करे तो उसका श्रेय.. धन्यवाद उसे अवश्य दें। सभी को कार्य करने का मौका दें। आवश्यक पड़ने पर उसे मार्गदर्शन दें , सहायता करें , पर कार्य का संपूर्ण यश उसी को दें। स्मरण रहे , मोक्ष का अर्थ देकर.. बाँटकर रिक्त होना है.. खाली होना है।

– परम पूज्य गुरुमाँ
स्रोत : मधुचैतन्य : नवंबर-दिसंबर २०२०

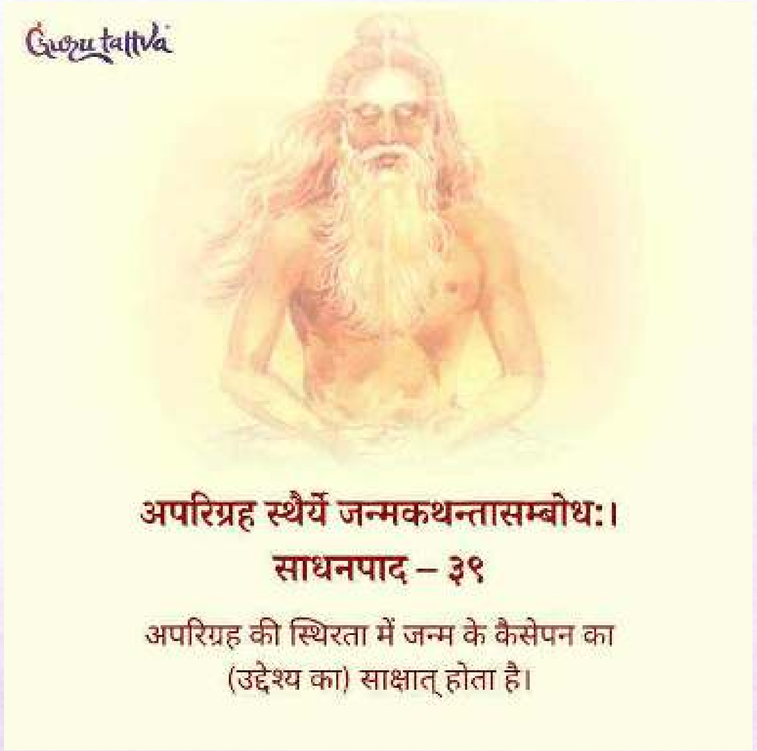

आपने २० साल, २५ साल तक इस समर्पण ध्यान संस्कार का लाभ लिया और अपनी आध्यात्मिक प्रगति कर ली। मैं आध्यत्मिक प्रगति का शब्द इस लिए इस्तमाल कर रहा हूँ, आध्यात्मिक प्रगति में सर्वांगीण प्रगति आ गई। आर्थिक प्रगति आ गई, मानसिक प्रगति आ गई, पारिवारिक प्रगति आ गई, सब प्रगति इसके अंदर आ गई। तो अब थोड़ा समय, थोड़ा टाइम गुरुकार्य के लिए दो ना। २५ साल जहाँ से आपने लाभ लिया और आपको अनुभव है, आपके साथ अच्छी- अच्छी अनुभूतियाँ हैं। इन अनुभूतियों के साथ, इन अनुभव के साथ आप अगर लोगों को बताने जाओगे तो उसका फर्क पड़ेगा न, प्रभाव पड़ेगा। जब तक आपको अनुभूति नहीं आती है तब तक आप बताओगे, उसमें कोई इफ़ेक्ट नहीं है। क्यों? उसमें सत्य नहीं है। इसके अंदर सत्य है। आपके जीवन में अनुभूतियाँ आई है। आपके जीवन में अनुभव आये हैं।

और दूसरा, मोक्ष पाने का नहीं है। मोक्ष बाँटने की चीज़ है। तो पच्चीस साल से आपने जो कुछ एनर्जी प्राप्त की है, आपने जो कुछ ऊर्जा प्राप्त की है, वो बाँटने का समय है। आप सब को बाँटो न, आप उसमें से भी मुक्त हो जाओ।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : पूर्णिमा दर्शन शिबिर प्रवचन ७ मई, २०२३

आज मकरसंक्रांति का पावन दिन है। ऐसे पवित्र दिवस पर दान करने की बहुत बड़ी प्रथा है। तो आज मौका भी अच्छा है। सामने गुरुदेव की शक्तियाँ दान लेने के लिए तैयार बैठी हुई हैं। लेकिन आज वह दान दो जो दान न आज तक आपने किसी को दिया है, न दोगे। क्योंकि यह दान एक ही बार दिया जा सकता है।

वह दान है, आज मुझे आपका भूतकाल समर्पित कर दो। आपके आत्मा ने नया जन्म लिया है, एकदम न्यूली बॉर्न बेबी हो, ऐसे छोटे-से अबोध, सच्चे, पवित्र बच्चे बन जाओ। छोड़ दो, सारा भूतकाल आज मुझे सौंप दो, मर जाओ आज, सारा पास्ट छोड़ दो। क्योंकि आप रामू भिखारी से आज राजा बन गए हैं। आज मुझे भूतकाल का दान दे दो। मैं आपको पूर्ण आश्वासन देता हूँ, आपको स्वर्णिम भविष्य दूँगा। लेकिन यह स्वर्णिम भविष्य आपके दान देने की परसेंटेज (प्रतिशत) के ऊपर डिपेंड (निर्भर) है, हंड्रेड परसेंट (सौ प्रतिशत) भूतकाल समर्पित किया, हंड्रेड परसेंट भविष्यकाल अच्छा, फिफ्टी परसेंट भूतकाल समर्पित किया, फिफ्टी परसेंट भविष्यकाल अच्छा, आपके देने के ऊपर लेना डिपेंड है। तो आज सौ प्रतिशत अपना भूतकाल समर्पित कर दो। कल से आपको पीछे की कोई बात याद नहीं रहनी चाहिए।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : समर्पण ध्यान महाशिविर, जनवरी २००४, नवसारी

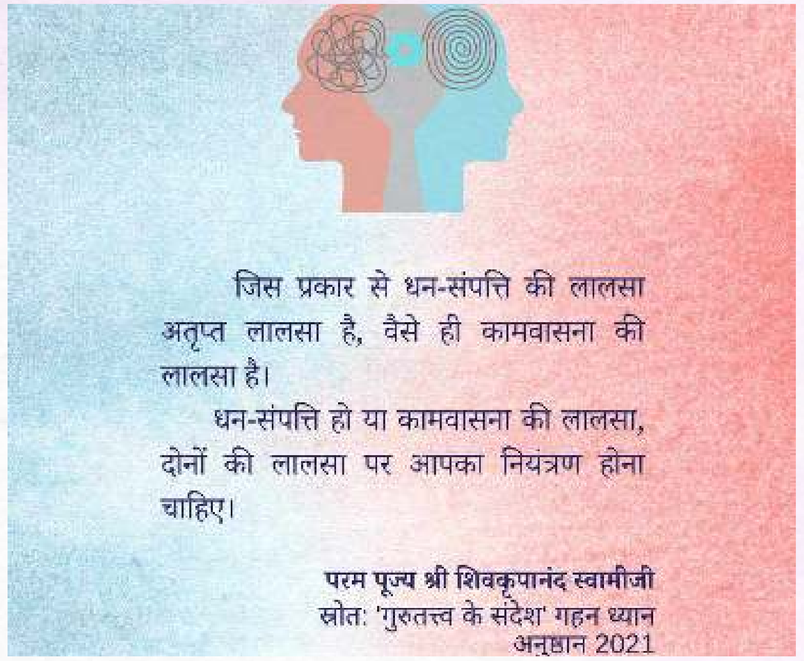

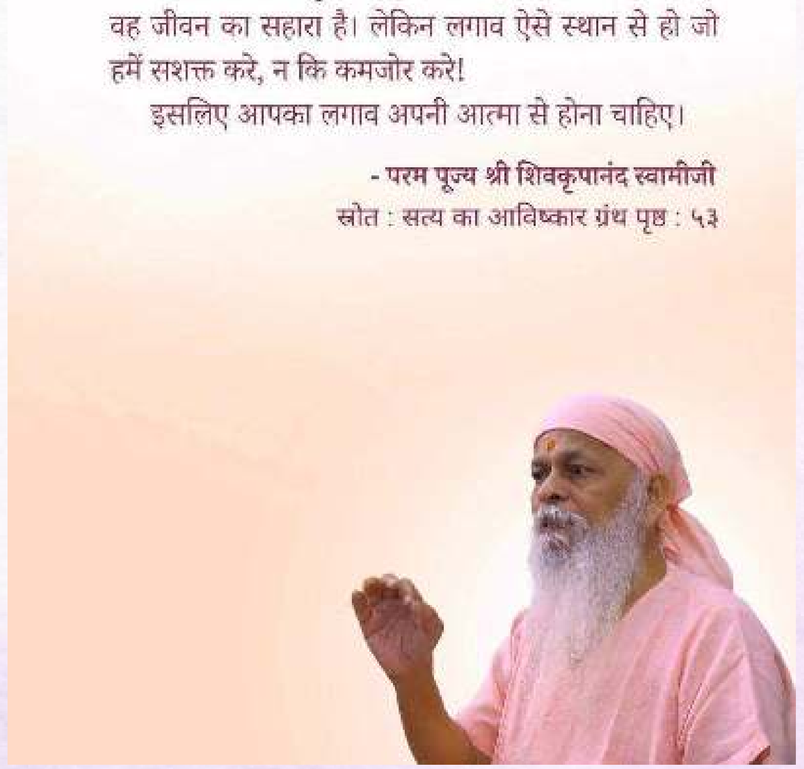

नियम

1. शौच

अच्छे शरीर के अंदर ही अच्छी आत्मा वास करती है। अगर शरीर अच्छा है, तो उसके अंदर अच्छी आत्मा वास करेगी। इसलिए कभी भी शरीर को निग्लेक्ट (उपेक्षित) करके, शरीर का तिरस्कार करके तुम (यह) सोचो कि तुमको मोक्ष मिल जाएगा या तुमको मुक्ति मिल जाएगी, तुम्हारा समर्पण हो जाएगा... कभी संभव ही नहीं है।

तो सबसे पहले शरीर को स्वच्छ रखना सीखो, शरीर को पवित्र रखना सीखो, अंदर से भी और बाहर से भी। दोनों ही ओर से आपका शरीर पवित्र होना चाहिए, आपका शरीर शुद्ध होना चाहिए। जितना शुद्ध रखोगे, जितना पवित्र रखोगे, उतना ही आपके आध्यात्मिक मार्ग में वह आपको सहायक सिद्ध होता है।

- नश्वर से ईश्वर तक के आठ सूत्र

2. संतोष/समाधान

संपूर्ण समाधान भी केवल सामूहिकता में ही प्राप्त हो सकता है। क्योंकि मनुष्य को समाधान नहीं होगा तो फिर अतृप्ति रहेगी। अतृप्ति रहेगी तो चित्त अतृप्ति की ओर होगा और जिस प्रकार की अतृप्ति है, उस प्रकार के विचार आएँगे और चित्त उन्हीं विचारों में भटकेगा। और जब चित्त ही स्थिर नहीं है, तो ध्यान कैसे लग सकता है ? इसलिए, समाधान व असमाधान समभाग में होने के कारण कोई मनुष्य ध्यान नहीं कर सकता है। **ध्यान तो समाधानी लोगों की सामूहिकता में लग जाता है।** फिर प्रश्न आता है, समाधानी लोगों की सामूहिकता लाए कहाँ से ? वह सामूहिकता हमें गुरुचरण पर मिलती है। यह वह स्थान है, जहाँ समाधानी, तृप्त आत्माओं की बड़ी सामूहिकता सदैव विद्यमान होती है। यह वह स्थान है, जहाँ से गुरु की शक्तियों से अपने-आपको जोड़ा जा सकता है।

– महर्षि श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
संदर्भ: हिमालय का समर्पण योग भाग 1 पृष्ठ - 497

समाधान

समाधान कभी पूर्ण नहीं होता, कोई भी समाधान कभी पूर्ण नहीं होता है। समाधान मिल गया तो भी अभी और मिलना चाहिए, और मिलना चाहिए ऐसा होता रहेगा।

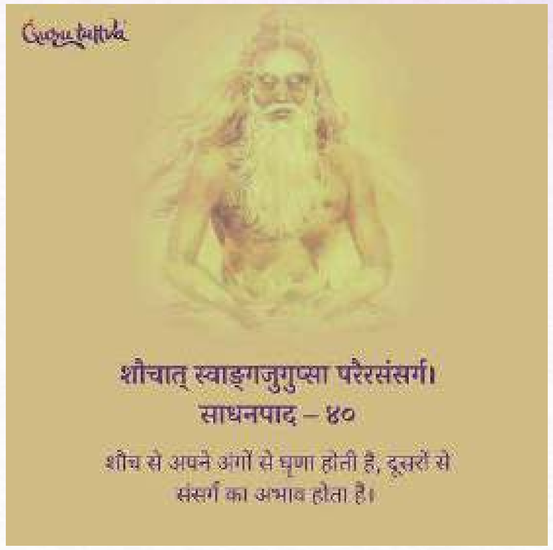

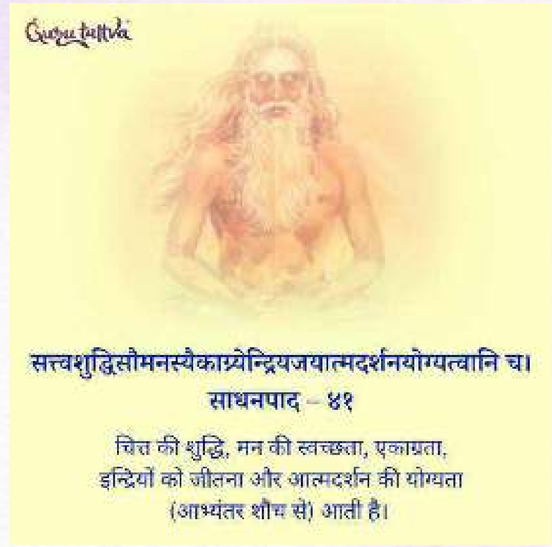

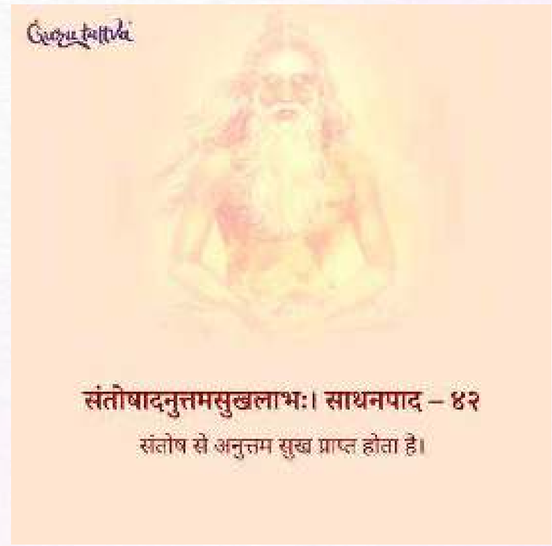

दुनिया में एक ही समाधान पूर्ण है कि
मुझे मेरा परमात्मा मिल गया,
मेरी परमात्मा की सारी खोज समाप्त हो गई।

3. तप

केवल शरीर से मन पर नियंत्रण के लिए समूचा शरीरभाव ही कम करने की आवश्यकता है। और वह कम हो सकता है आत्मभाव को बढ़ाने से और आत्मभाव बढ़ सकता है परमात्मा के सान्निध्य से और 'परमात्मा' से मेरा आशय पवित्र और शुद्ध आत्माओं की सामूहिक शक्ति से है। जब आपकी आत्मा ऐसी पवित्र आत्माओं की सामूहिकता में शामिल होगी तो आपकी आत्मा का एहसास बढ़ेगा और एहसास बढ़ेगा तो आत्मभाव भी बढ़ेगा और **आत्मभाव बढ़ने पर शरीर का भाव स्वयं ही कम हो जाएगा।** और ऐसी बड़ी **सामूहिकता 'सदगुरु' के साथ में ही प्राप्त से सकती है।**

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : समग्र योग ग्रंथ संदेश

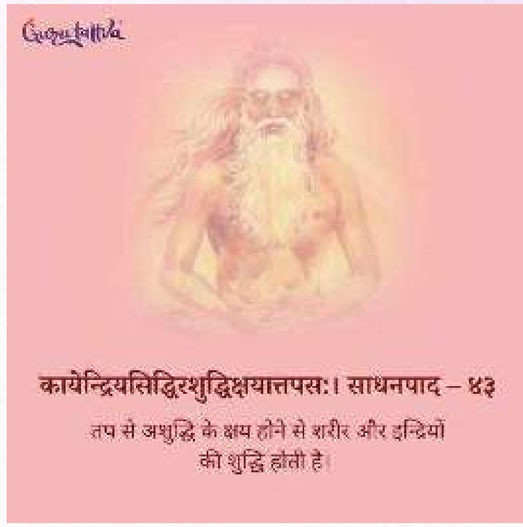

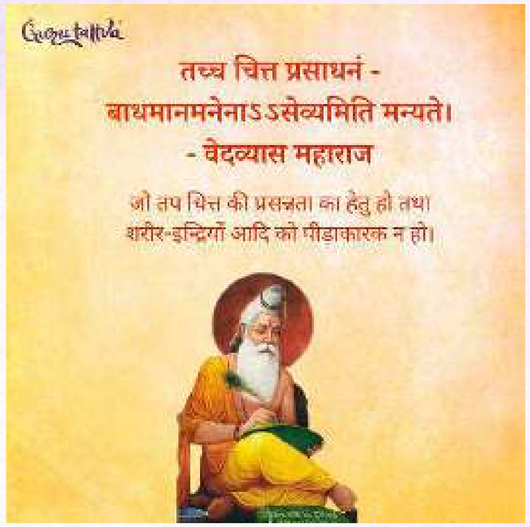

4. स्वाध्याय

'प्रथम तो अपने आत्मा के साथ 'एकांत' में बैठकर पहला प्रश्न अपने आप से पूछो, 'मैं कौन हूँ?' बाद में 'मैं कहाँ से आया हूँ?', 'मुझे कहाँ जाना है?', 'मेरे जीवन का क्या उद्देश है?', 'मैंने यह शरीर क्यों धारण किया है?' 'मुझे यह शरीर धारण करके क्या करना है और अभी मैं क्या कर रहा हूँ?"

आपको इस एकांत में ऐसी अवस्था प्राप्त होना चाहिए कि आपको आपके जीवन की समस्याएँ, बीमारी, व्यसन, तकलीफें, सभी रिश्ते भी याद न रहें। आपको यह भी भूल जाना चाहिए कि आप किस देश के, धर्म के हैं, किस जाति या भाषा के हैं। यहाँ तक कि आप यह भी भूल जाओ कि आप स्त्री हैं या पुरुष हैं। ऐसी स्थिति में ही अपनी आत्मा के साथ संबंध स्थापित हो सकता है। क्योंकि यह सारी बातें ही शरीर से संबंधित हैं। **शरीर धारण करने से पहले न ये बातें थीं और न शरीर छोड़ने के बाद यह बातें रहेंगी।** सारी 'झंझटें' यह शरीर की ही होती हैं।

आत्मसाधना एक दिन में होने वाली नहीं है। उसके लिए आपको नियमित रूप से कई दिनों तक साधना करना होती है।

इसीलिए प्रथम आपको मंत्र दिया है - '**मैं एक पवित्र आत्मा हूँ। मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ।**' पहले अपने-आप को तो जानो! आप अपने-आप को जान लो तो ही बाकी बातें समझ में आएँगी।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

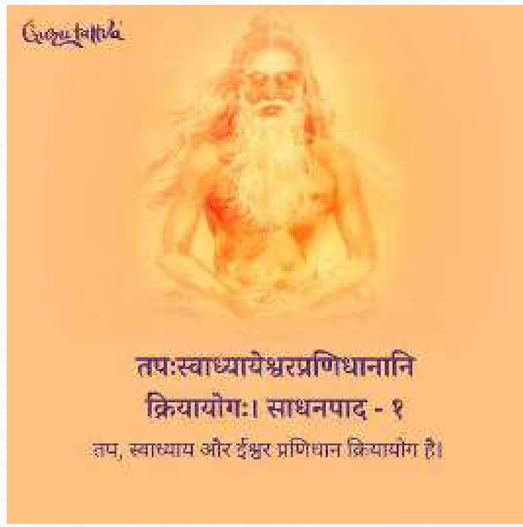

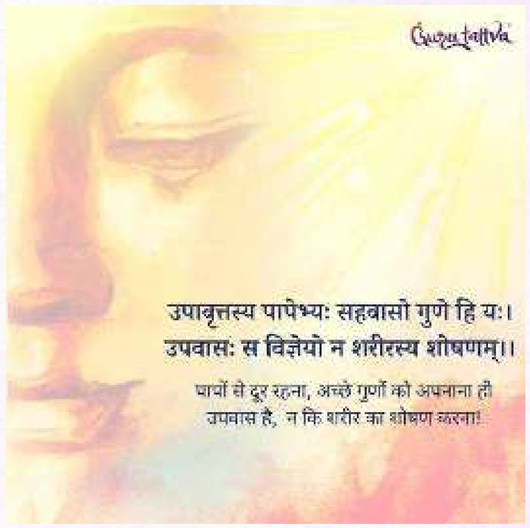

आत्मभाव वृद्धिगत होने पर शरीरभाव कम हो जाता है।

योग मार्ग में दोनों वर्जित हैं। अति खाना भी
वर्जित है, उपवास भी वर्जित है।

- महर्षि श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
संदर्भ : मधुचैतन्य सामयिक अंक
जनवरी-फरवरी-मार्च 2009

5. ईश्वर प्राणिधान

समर्पण ध्यान के पूर्व समर्पण शब्द लगा है।

'समर्पण' यानी अपना सर्वस्व कर्ता भाव का समर्पण है, संपूर्ण अहंकार का समर्पण है, अपने 'मैं' का समर्पण है, अपने भूतकाल का समर्पण है। अपने किए गए पापों का समर्पण है, अपनी की गईं गलतियों का समर्पण है, अपने बुरे व्यसनों का समर्पण है, अपने बुरे संस्कारों का समर्पण है।

इतना सब समर्पित करने के बाद आपके पास बचा ही क्या जो आपको विचार आएँगे? **विचार आते हैं यानी समर्पण का नाटक किया है, समर्पण का प्रयत्न किया है।** लेकिन अभी दिल्ली दूर है, अभी समर्पण हुआ नहीं है। क्योंकि **समर्पण होने के बाद 'कर्ता' का भाव संपूर्णत: चला जाता है।**

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सान्निध्य ग्रंथ पृष्ठ 131

ध्यान की सारी पद्धतियाँ 'निर्विचारिता' तक जाकर समाप्त होती हैं और समर्पण ध्यान तो वहाँ से प्रारंभ होता है।

'भाव', समर्पण 'ध्यान' 'आत्मा' के 'परमात्मा' के प्रति 'समर्पित भाव' पर आधारित होता है। और आत्मभाव जागृत करने के लिए सर्वप्रथम आप अपने-आप को जानो और आप शरीर नहीं हो, आत्मा हो यह पहचानो। और यह तभी हो सकेगा जब आपका 'चित्त' शुद्ध होगा, पवित्र होगा।

आप दूसरों का ही विचार करते हो, **प्रथम अपना विचार करो न।** थोड़ा समय एकांत में अपने आत्मा के साथ बिताओ।

आप अपने आप को शरीर समझते हो, इसीलिए 'मन', विचार और एकाग्रता का सवाल उठता है, क्योंकि यह सब शरीर से ही संबंधित है।

और **समर्पण ध्यान तो आत्मा के द्वारा परमात्मा के माध्यम से परमात्मा तक संबंध स्थापित होता है। 'कर्ता' समाप्त होता है, तभी समर्पण होता है।**

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : सान्निध्य ग्रंथ पृष्ठ 134

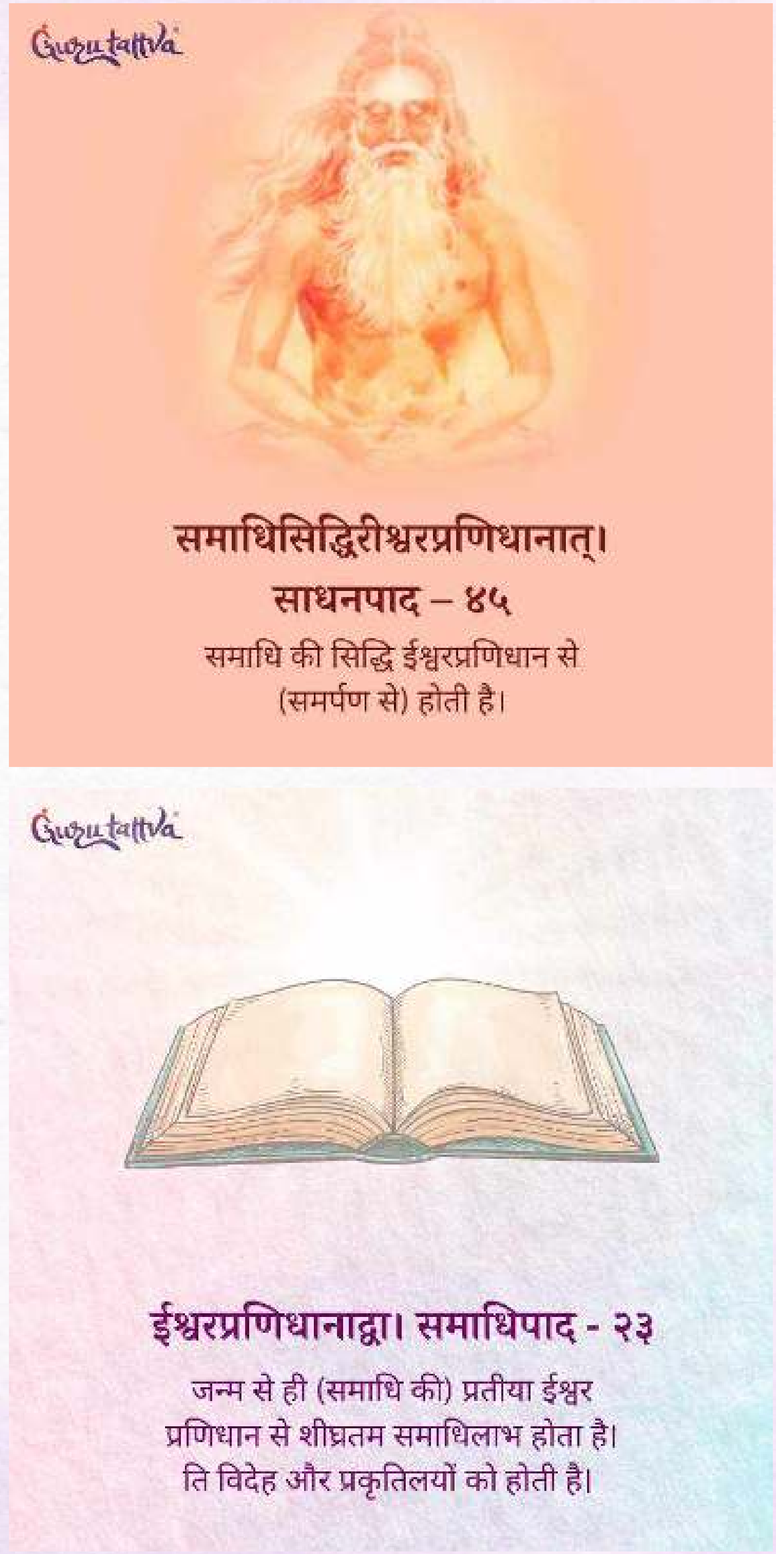

योगासन 'योग' नहीं है

योगासन 'योग' नहीं है। लेकिन हम अगर 'योगासन' करते हैं तो हमारे शरीर में एक प्रकार की लोच निर्माण हो जाती है तथा हम हमारे शरीर पर 'नियंत्रण' करना सीख जाते हैं और बाद में इसका लाभ हमें ध्यानयोग करते समय मिलता है। 'ध्यानयोग करते समय पहले २० मिनट हमें हमारे शरीर पर नियंत्रण करने में ही लग जाते है और अगर हमने योगासन करके अपने शरीर पर नियंत्रण करना सीख लिया है तो यह ध्यानयोग के लिए अच्छा होता है। शरीर पर नियंत्रण न हो तो खांसी आना या उबासी आना, गैस निकलना, खुजली होना यह सब होता है। साधक बड़ी कठिनाई से इस पर नियंत्रण रख पाता है तो बाद में प्रारंभ होता है विचार आना।

'मन' में अलग-अलग विचार आना प्रारंभ हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर की संरचना ही ऐसी है कि जब शरीर किसी कार्य में व्यस्त रहता है तो 'मन' में विचार नहीं आते। जैसे ही शरीर निष्क्रिय होता है तो मन सक्रिय हो जाता है। और इसी प्रकार की आदत ही शरीर को लगी होती है। यह शरीर और मन की आदत ही 'ध्यानयोग करते समय की दूसरी सबसे बड़ी बाधा है। यह बाधा आपको, "ध्यान नहीं लग रहा है तो उठ जा." यह सुझाव भी देती है। क्या-क्या कार्य करना अभी बाकी है, यह सभी कार्य 'बुद्धि' गिनाना प्रारंभ करती है। और "यह कार्य तो अति आवश्यक है. यह अभी करना आवश्यक है, अब उठ जा." यह कहकर बुद्धि ध्यानयोग करने से साधक को रोकती है और साधक उठ जाता है। और ध्यानयोग में से उठ जाने के बाद साधक को यह भी याद नहीं आता कि कौन सा अति आवश्यक कार्य करने के लिए मैं उठा था।

वास्तव में, कार्य अति आवश्यक नहीं होता है, आपको 'ध्यानयोग' में से उठाना ही (शरीर-मन के लिए) आवश्यक कार्य होता है। क्योंकि शरीर की और मन की व्यवस्था के विरोध में आप ध्यानयोग करने जा रहे हो। शरीर निष्क्रिय रहे और मन में विचार न आए, ऐसी व्यवस्था से शरीर में नहीं है। मन का खेल प्रारंभ होता है विचारों से।

हमें विचार दो ही प्रकार के आते हैं। एक तो भूतकाल के विचार। यानी हमने अपने जीवन में जो दिन जीवन में बिताए है, उसके विचार। कोई बुरा व्यक्ति या बुरी घटना से गई हो तो उसके विचार आते ही रहते हैं। और शांत पानी में आप एक छोटा-सा पत्थर भी फेंको तो जिस प्रकार से विभिन्न वलय निर्माण होते है, ठीक वैसे ही जीवन में घटी घटना की तरंगों को भी हम उठा हुआ महसूस करते हैं।

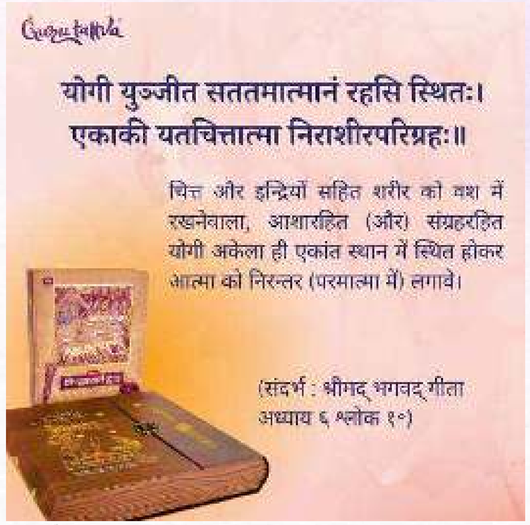

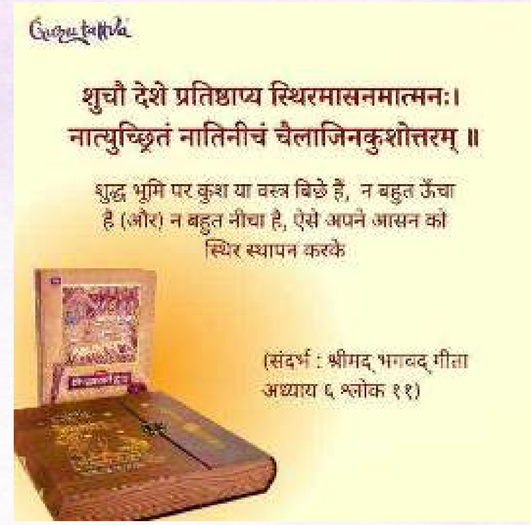

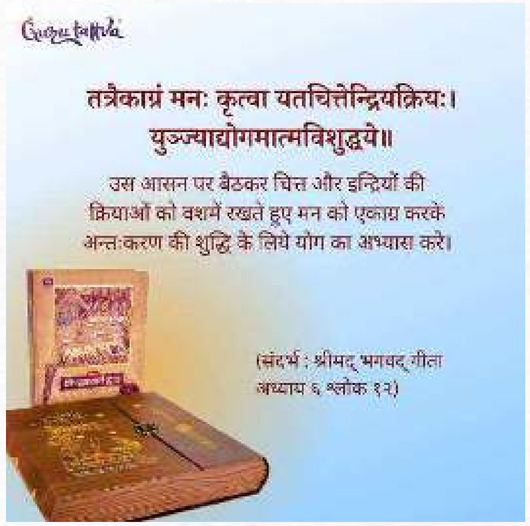

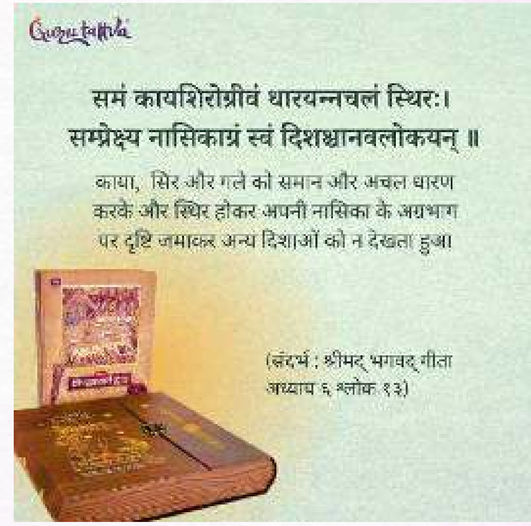

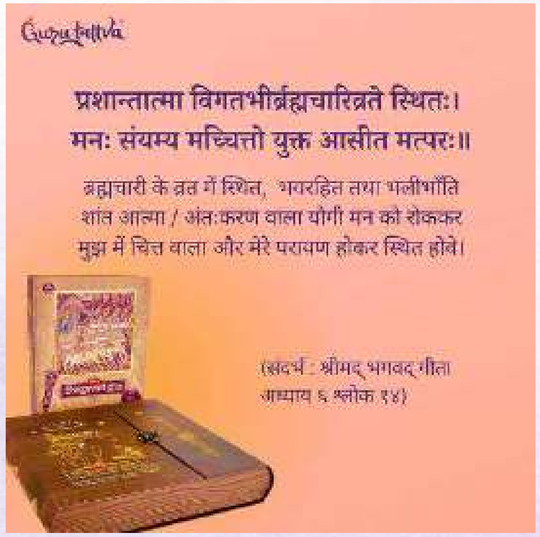

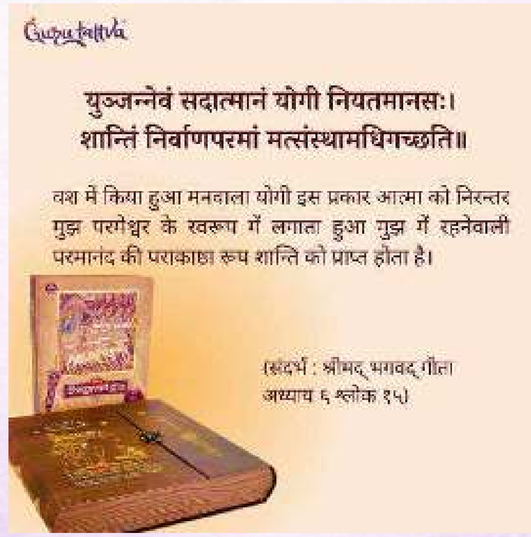

'मन' विचार लाता है तो 'चित्त ' हमें उस स्थान पर ले जाता है और वह भूतकाल का स्थान और दृश्य भी हमें दिखना प्रारंभ हो जाता है और चित्त उस स्थान से अच्छी या बुरी ऊर्जा भी ग्रहण करना प्रारंभ करता है।

आवाज तरंगों के माध्यम से स्थान की स्थिति को आसपास प्रसारित करता है। यही कारण है कि मंदिर का घण्टानाद या गिरजाघर का घण्टानाद सुनने पर हमारा 'मन' प्रसन्न होता है। यह सब होता है लेकिन हम जान नहीं पाते है। ठीक इसी प्रकार से, हम चित्त जहाँ भी रखते हैं, हम यहाँ से अच्छी या बुरी उर्जा ग्रहण करते हैं। हम भूतकाल की अच्छी घटनाओं पर चित्त रखेंगे तो अच्छी ऊर्जा ग्रहण करेंगे और बुरी घटनाओं पर चित्त रखेंगे तो बुरी घटनाओं से बुरी ऊर्जा ग्रहण करेंगे। यानी हम चित्त कहाँ रख रहे हैं, उसी पर सब कुछ निर्भर होता है।

जिस प्रकार से भूतकाल के विचार आते है, बाद में चित्त को भी विचार भूतकाल में ले जाते है। ठीक वैसे ही भविष्यकाल के विचार भी आते हैं और चित्त से भविष्यकाल के सपने भी मन दिखाता है। इन दोनों ही स्थितियों में हम अपनी ऊर्जा को खोते हैं।

निर्विचारिता की स्थिति एक ऐसी स्थिति है जिसमें कोई भी विचार नहीं आते हैं। लेकिन यह स्थिति सामान्यतः प्राप्त नहीं होती है। किसी क्रमबद्ध तरीके को संपूर्ण भाव और एकरूपता के साथ करने पर थोड़े क्षण के लिए प्राप्त हो सकती है। जैसे पूर्ण श्रद्धा और भाव के साथ, लयबद्ध तरीके से, क्रमबद्ध तरीके से पूजा करना या संपूर्ण भाव के साथ गाना गाना, संपूर्ण भाव के साथ नृत्य करना। लेकिन यह तभी संभव है, जब आपकी पूर्ण इच्छा वह कार्य करने की हो और आपका शरीरभाव समाप्त हो जाए। शरीरभाव समाप्त हो जाने पर विचार भी समाप्त हो जाते हैं। शरीरभाव के कारण ही विचार आते हैं।

योग केवल शरीर पर नियंत्रण पाने की नहीं अपनी आत्मा के नियंत्रण में जाने की यात्रा है। 'मन' पर नियंत्रण तो उस मार्ग का एक पड़ावभर है। जब हम योगासन करते हैं तो साथ-साथ श्वास का भी अभ्यास करते हैं। "यह आसन साँस लेते हुए करना।" "यहाँ से साँस छोड़ना।" यानी आसनों के साथ साथ साँसों का भी अभ्यास होते रहता है। यानी हम हमारे मन को साँस पर केंद्रित कर लेते हैं और कुछ क्षण हमारा हमारे शरीर पर और 'मन' पर भी नियंत्रण हो जाता है और 'योगासन' करते समय हमारे विचार भी बंद हो जाते है। शरीर और मन दोनों एक ही स्तर पर होते हैं।

आत्मा तक पहुँचने के दो मार्ग हैं।

अब अंतर्मुखी होकर आत्मा तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग है राईट साईड वाला, एक मार्ग है लेफ्ट साइड वाला। अब आपका ही स्वयं अनुभव के आधार पर निर्णय लें कि आपको कौन-सा मार्ग अच्छा लगता है। साधक भी दो प्रकार के होते हैं। अब आप अपना स्वयं का व्यक्तिगत कौन-सा मार्ग है, वह आप स्वयं ही निश्चित करें। दोनों ही मार्ग अच्छे हैं, दोनों ही मार्ग से आत्मा तक ही पहुँचा जा सकता है।

(१) आत्म-नियंत्रण का मार्ग :-

पहला मार्ग है आत्म-नियंत्रण का मार्ग आपको अपने ही इन्द्रियों पर धीरे-धीरे नियंत्रण करना होता है। यह राईट साईड वाला मार्ग है। **आपके भीतर अगर खूब कर्ता का 'अहंकार' है तो यह मार्ग आपके लिए अच्छा है।** उस भीतर के 'कर्ता' के भाव को इस मार्ग में सही रास्ता मिलता है। इस मार्ग में स्वेच्छा से कठिन 'साधना' करके आपको ही आपके सभी इन्द्रियों पर धीरे-धीरे नियंत्रण कर लेना पड़ता है। क्योंकि हमें हमारे इन्द्रियों के द्वारा ही हमारे शरीर का 'भाव' का पता चलता है। हमारी इन्द्रिय ही हमें - हम शरीर हैं, इसका भाव सदैव याद दिलाते रहती है। आपके इस मार्ग में आपकी इन्द्रिय तो रहेगी, पर वह संवेदनशील नहीं रहेगी। उनकी संवेदनशीलता पर आपका स्वयं का ही नियंत्रण हो जाएगा।

'**जिबान**' कितना छोटा-सा शरीर का अवयव है लेकिन फिर भी वह सारे शरीर पर नियंत्रण करता है।

जिबान से अंदर जाने पर तो सारा पदार्थ ही 'व्यर्थ' हो जाता है। जिवान का नियंत्रण इतना अधिक होता है कि हम भी देखते हैं, साधक आश्रम में भी आते हैं तो 'भोजन प्रसाद' को भी 'मिर्च- मसाले' वाला चटपटा 'जिवान' को अच्छा लगे, ऐसी अपेक्षा रखते हैं; यानी भोजन 'प्रसाद' है, इसका भी एहसास उन्हें नहीं होता है। यहाँ भी 'समर्पण भाव' पर 'जिबान' भारी पड़ती है। यानी प्रथम आपको इस 'जिबान' पर नियंत्रण करना होगा क्योंकि जो भी जिबान को अच्छा लगता है, वह शरीर के लिए अच्छा नहीं होता है।

शरीर पर नियंत्रण करने के लिए प्रथम जिबान पर नियंत्रण करना होगा।

अब दूसरा इन्द्रिय है, हमारी **आँखें।** यह सदैव ही हमारा चित्त बाहर की ओर लेके जाती रहती है। और सदैव ही हमें यह दूसरे के दोष ही दिखाती रहती है। मान लो, परमात्मा भी हमारे सामने आया तो वह उसका भी कोई 'शारीरिक दोष' ही हमें दिखाएगी। यह आँखें सदैव ही हमारा चित्त बाहर की ओर ही रखती है। चित्त को कभी भी भीतर रहने ही नहीं देती है।

आँखें' सदैव अधिक जानने, देखने के लिए सदैव ही उत्सुक रहती है। जैसे प्रत्येक वस्तु देखना ही आवश्यक हो, हम देखते हैं! सड़क से सफर भी करते हैं तो रास्ते के सभी विज्ञापन, सभी बोर्ड पढ़ते चलते हैं, मानो यह सब पढ़ना जरूरी ही हो ! क्यों? सोचा है? इसी 'आँख' के स्वभाव के कारण ! आपको आपके स्वनियंत्रण के द्वारा इन आँखों के स्वभाव को बदलना होगा। भले ही आपकी 'आँखें' खुली भी हो, तो भी स्थिर हो। वह सामने दिखने वाली वस्तु का 'आकलन' और 'निरीक्षण' न करे। यानी आपको सब दिख रहा हो लेकिन जो दिख रहा है उसकी रिपोर्टिंग आँखें 'मस्तिष्क' तक न करे। यह शरीर के सिस्टम के एकदम विरुद्ध है। लेकिन 'आत्म-नियंत्रण' से यह संभव है। जिबान भी कोई पदार्थ खाए लेकिन उसका स्वाद कैसा है, इसकी रिपोर्टिंग 'मस्तिष्क' को न करे न न करे - न अच्छा बताए और न खराब बताए। यह सब बातें आत्म-नियंत्रण साधना से संभव होती हैं। यह असंभव लगती है लेकिन असंभव नहीं है। जिबान की, 'आँख' की संवेदनशीलता पर ही आपका नियंत्रण हो जाता है।

'तीसरा महत्त्वपूर्ण इन्द्रिय है, **'कान'** । ये पता नहीं क्या-क्या खराब खराब बातें सुनता है और हमारे मस्तिष्क को खराब कर देता है। ध्वनि और शब्दों के माध्यम से 'कान' मनुष्य का चित्त बाहर की ओर लेके जाता है। हमारे चित्त को एकाग्र करने के बीच कान सबसे बड़ी बाधा है। शोरगुल के बीच हमारा चित्त एकाग्र कभी हो ही नहीं सकता है। आपको आपके स्वनियंत्रण से कान के ऊपर भी नियंत्रण करना होगा। क्या सुनना है, क्या नहीं सुनना, यह आपकी इच्छा के ऊपर निर्भर होगा। आपके कानों को सुनाई तो आवाजें आएँगी, पर वह आवाजें आपके मस्तिष्क नहीं पहुँचेंगी, ऐसा नियंत्रण करना होगा। यानी आपकी 'श्रवणशक्ति' पर आपको अपना नियंत्रण करना होगा क्योंकि कान की श्रवणशक्ति ही हमें - हम शरीर हैं का एहसास दिलाती है। कितने भी भीड़भाड़ वाले, शोरगुल वाले माहौल में भी आप शांत चित्त रह सकते हैं। यह बाहर की अशांति आपके भीतर की शांति को भंग नहीं कर पाती है; और यह असंभव नहीं है।

चौथा इन्द्रिय है **'नाक'**। यह नाक हमें सांस ले रहे हैं, सांस छोड़ रहे हैं, और यह क्रिया हम शरीर से कर रहे हैं, और हम शरीर ही हैं का एहसास कराती है। कुछ ध्यान की पद्धतियों में अपनी सांस के ऊपर चित्त रखकर ही ध्यान करना सिखाया जाता है। लेकिन इस प्रकार की पद्धति से केवल 'आज्ञा चक्र' तक ही पहुँचा जा सकता है। यानी यह पद्धति भी संपूर्ण नहीं है। सांस लेना और सांस छोड़ना भी हमारे शरीर की ही एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया पर भी चित्त रखेंगे तो भी शरीर का 'एहसास' तो होगा ही! इसलिए सांस लेना और सांस छोड़ना, यह प्रक्रिया भले ही समान रूप से 'नाक' चलती रहे, हमें हमारी इस प्रक्रिया का भी एहसास न हो; हमारा हमारे नाक पर भी पूरा नियंत्रण हो। नाक को क्या खुशबू आ रही है या बदबू आ रही है, इसकी माहिती (जानकारी) भले ही नाक ले, पर वह माहिती हमारे मस्तिष्क को न दे।

पाँचवां इन्द्रिय है **'स्पर्श ज्ञान'**। हम हमारे स्पर्श से भी बहुत-सी बातें समझ में आती हैं। हम स्पर्श से भी कई बातें जान जाते हैं। हमारा स्वयं का इस पर भी पूरा नियंत्रण होना चाहिए। हमारा शरीर हमारे सात चक्रों के नियंत्रण में ही होता है। शरीर पर इन सात चक्रों के माध्यम से नियंत्रण करते हैं और यह नियंत्रण करने में हमें एक-एक चक्र पर सात-सात साल लगते हैं। यानी संपूर्ण शरीर पर इस प्रकार से स्वनियंत्रण करने में हमें ४९ साल का समय लग सकता है। और इतने साल बीत जाने के बाद भी सफलता मिलेगी ही यह कोई गॅरंटी (निश्चित) नहीं है; मिल भी सकती है और नहीं भी मिल सकती है।

(२) दूसरा मार्ग है सद्गुरु के प्रति 'संपूर्ण समर्पण' का भाव रखना।

परमात्मा यानी विश्वचेतना; और मुझ तक पहुँचने के लिए उस विश्वचेतना ने जो भी 'माध्यम' अपनाया, उसी 'माध्यम' को ही परमात्मा मानना, भले ही वह सामान्य मनुष्य हमें शरीर से एक शरीर ही दिख रहा है। मैंने स्वयं ने यही मार्ग अपनाया। यह मार्ग मेरा जाना पहचाना मार्ग है। इस मार्ग की मुझे पूरी जानकारी है। इस मार्ग की दिक्कतों से, रुकावटों से, मुझे परा ज्ञान है। एक सामान्य से मनुष्य को ही 'परमात्मा' मानकरके ही जीवन में आध्यात्मिक प्रगति की है।यहाँ तक पहुँचा हूँ।

इस मार्ग के ऊपर शरीर और बुद्धि से चलना असंभव है, क्योंकि हम शरीर से सामनेवाले सद्गुरु को देखेंगे तो वह एक सामान्य शरीर ही दिखेगा और बुद्धि से सोचेंगे तो उसकी बताई बातें उस समय 'व्यर्थ' ही लगेंगी, क्योंकि वह बोलता है अपने स्तर से और हम हम सुनते हैं अपने स्तर से! इस मार्ग में प्रगति करने के लिए स्वयं को 'आत्मा' बनना होगा। और आत्मा बनने के लिए प्रथम 'मैं शरीर नहीं एक आत्मा हूँ' यह भाव निर्माण करना होगा। अब यह भाव एक क्षण में भी निर्माण हो सकता है और सालों भी लग सकते हैं।

परमात्मा अनुभूति करने वाली बात है और अनुभूति तो आत्मा से ही की जा सकती है। यानी जब तक हमें आत्मा होने का भाव नहीं आएगा, हमें परमात्मा की अनुभूति नहीं होगी। यह अनुभूति ही है जो सामान्य मनुष्य को देखकर भी परमात्मा की अनुभूति कराती है।

अनुभूति एक समाधान है, परमात्मा की प्राप्ति का। मुझे परमात्मा मिल गया यह अनुभव तो अनुभूति ही कराती है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : पवित्र आत्मा ग्रंथ

Gurutattva

हमारे देश में 'गीता' नामक एक पवित्र ग्रंथ है। उस ग्रंथ को मैंने कभी पढ़ा नहीं है लेकिन उसे सिरहाने रखकर उसमें से निकलने वाली ऊर्जा का अनुभव किया है और उससे जाना है कि उस पवित्र ग्रंथ का संदेश क्या है?

संदेश यह है कि रथ अर्जुन का है लेकिन फिर भी रथ की कमान (नियंत्रण) श्रीकृष्ण के हाथों में सौंप रखी है। सारथी स्वयं श्रीकृष्ण हैं और उस सारथी के हाथों में अपने रथ की कमान सौंपकर अर्जुन निश्चिंत होकर युद्ध करने को युद्धभूमि पर खड़ा है।

अर्जुन 'मैं' के अहंकार का प्रतीक है, रथ शरीर का प्रतीक मालूम होता है और श्रीकृष्ण परमात्मा का प्रतीक हैं।

श्रीकृष्ण सद्गुरु हैं और शिष्य अर्जुन है। अर्जुन ने अपने रथ की कमान उनके हाथों में दी है। अर्जुन रथ की कमान अपने सद्गुरु को देखकर हाथ पर हाथ रख बैठा नहीं है। लड़ने का कर्म वह कर रहा है लेकिन युद्ध के परिणाम की चिंता उसे नहीं है। वे सब चिंताएँ उसने सद्गुरु श्रीकृष्ण को परमात्मा मानकर सौंपी हैं।

गीता ग्रंथ के वाइब्रेशन संपूर्ण समर्पण की अनुभूति कराते हैं।

- परमपूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी

स्रोत : हिमालय का समर्पण योग ग्रंथ
भाग - 5 पृष्ठ - 229

Gurutattva

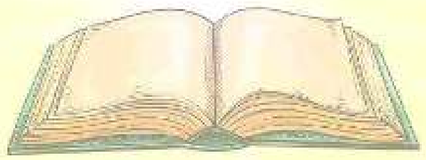

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्।
समाधिपाद - १९

जन्म से ही (समाधि की) प्रतीति विदेह और प्रकृतिलयों को होती है।

Gurutattva

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

(हे अर्जुन! तू) मुझ में मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो (और) मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा। (यह मैं) तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

(संदर्भ : श्रीमद् भगवद् गीता
अध्याय १८ श्लोक ६५

Gurutattva

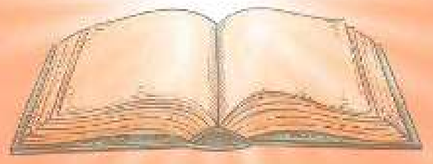

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्। समाधिपाद - २०

जन्म से ही (समाधि की) प्रतीति विदेह और प्रकृतिलयों को होती है।

योग का सही प्रचार – आज की आवश्यकता

अंन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस को प्रारंभ करने में हमारे देश भारत की और भारतीयों की प्रमुख भूमिका है। 'योग' भारतीय संस्कृति का विश्व को एक उपहार है।

'योग' का अर्थ मनुष्य के शरीर का अपनी आत्मा के साथ विलीन हो जाना। लेकीन आज 'योग' का अर्थ लगाया जा रहा है - केवल योगासन करना। जबकि योगासन 'समग्र योग' का केवल आठवाँ हिस्सा ही है। तो हमारी यह नैतिक जिम्मेदारी बन जाती है कि योग का समग्र रूप विश्व के सामने रखा जाए। वरना आनेवाली पीढ़ियाँ योगासन को ही योग समझेगी। विशाल क्षेत्र

योग हिन्दु संस्कृति की देन है, यह सत्य है। इसमें कोई शंका नहीं है। लेकिन हिन्दु संस्कृति को कुछ लोग हिन्दु धर्म कहकर छोटा कर रहे हैं। **हिन्दु संस्कृति समस्त मानवजाति का कल्याण चाहती है।**

ऐसी विशाल संस्कृति है। हिन्दु संस्कृति एक खुली किताब की तरह है, जिसमें आज भी कोई अपनी चार बातें जोड़ सकता है। **केवल इसी संस्कृति में जीवंत परमात्मा की परिकल्पना है। गुरु साक्षात् परब्रह्म।** योगदिवस अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तभी मनाया जा सकता है जब ऐसी योग की पद्धति हो जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ सके। इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं। एक तो ऐसा मंत्र जिसे प्रत्येक मनुष्य नि:संकोच रूप से बोल सके और ऐसी पद्धति जिसे विश्व में मान्यता मिली हो। आप सभी को यह प्रसन्नता से बता सकते हैं कि ये दोनों बातें समर्पण ध्यानयोग पद्धति में विद्यमान हैं।

मैं एक पवित्र आत्मा हूँ, मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ। कहने में किसी भी मनुष्य को कोई संकोच नहीं है।

आज मनुष्य को मनुष्य से जोड़ सके ऐसी यह विश्व की एकमात्र योग पद्धति है, **जिसे हिमालय के गुरुओं के आशीर्वाद प्राप्त हैं।**

नमस्कार
आपका,
बाबा स्वामी
संदर्भ: दिनांक २१-६-२०१६ को दिए संदेश से

Gurutattva

योग का क्षेत्र इतना विशाल है कि मनुष्य को मनुष्य से जोड़ सके...

वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना जो हमारे पूर्वजों ने की थी, उसको साकार करने का कौन-सा मार्ग है? एक ही मार्ग है, वो मार्ग है - योग! योग के माध्यम से वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना संपूर्णत: साकार हो सकती है।

आज समर्पण ध्यानयोग संस्कार विश्व के २९ से भी अधिक देशों में अपनाया गया है और पिछले २५ सालों से अलग-अलग जाति के, अलग-अलग रंग के, अलग-अलग देश के, अलग-अलग भाषा के लोगों ने इस संस्कार को ग्रहण करके आत्म-अनुभव प्राप्त किया है, आत्म-अनुभूति प्राप्त की है।

- परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी
स्रोत : मधुचैतन्य पत्रिका
जुलाई-अगस्त, २०२०

मानवधर्म को विकसित करने का एकमात्र मार्ग योग

आज प्रत्येक देश की सरकार चाहती है कि उनके देश में भाषा के, जाति के, धर्म के, रंग के कोई विवाद न हो, ताकि देश तेजी से प्रगति कर सके, विकास कर सके।

योग एक ही मार्ग है जिसे अपनाए हुए लोग इन सभी सीमाओं से ऊपर उठाकर एकत्र होते हैं, क्योंकि योग को जीवन में अपनाने से भीतर की मनुष्यता बढ़ती है और जब मनुष्यता बढ़ती है, बाकी सारी सीमाएँ कोई मायना नहीं रखती हैं।

सारे मनुष्यों का एक ही धर्म है। वह है – मानवधर्म।

वह धर्म जितना विकसित होगा, राष्ट्र भी उतना ही विकसित होगा। **मानवधर्म को विकसित करने का एकमात्र मार्ग योग ही है।** यही कारण है कि इतनी अधिक संख्या में विभिन्न देशों की सरकारों ने इस योग के महत्त्व को जाना है।

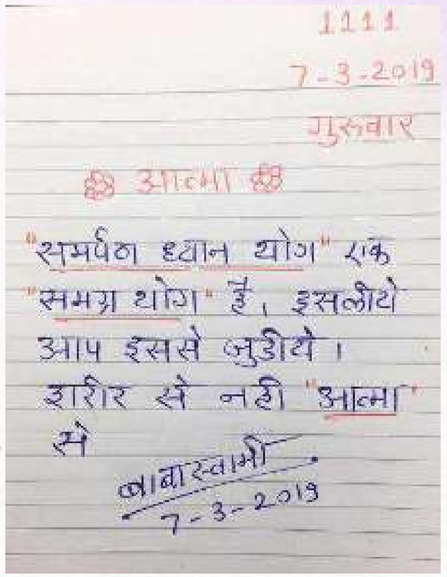

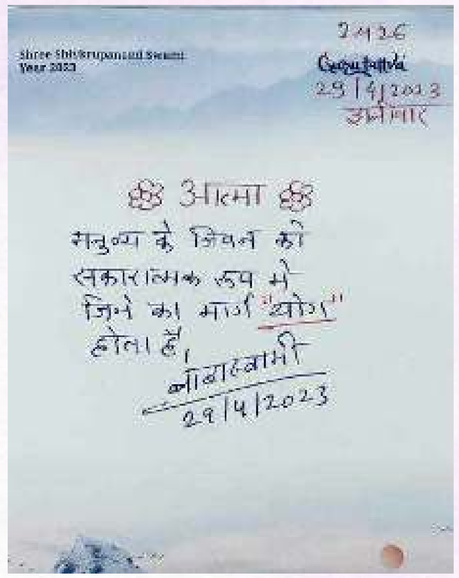

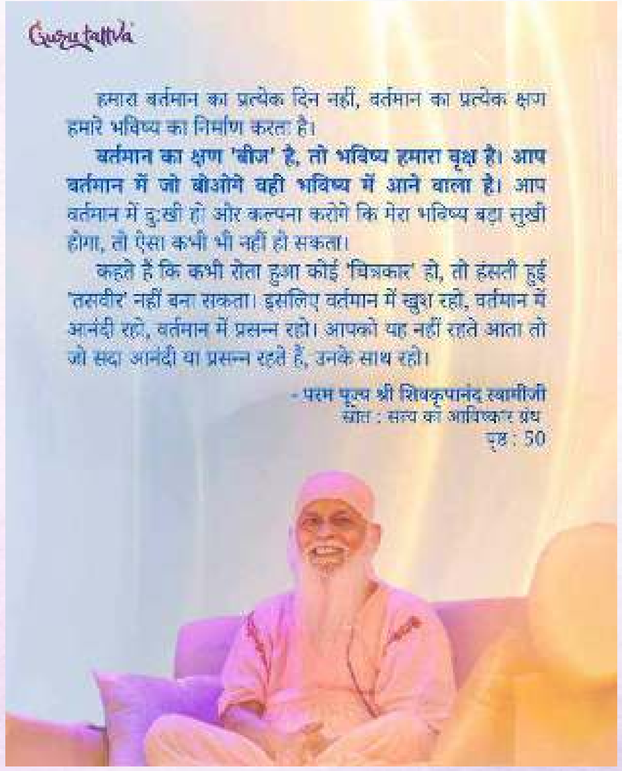

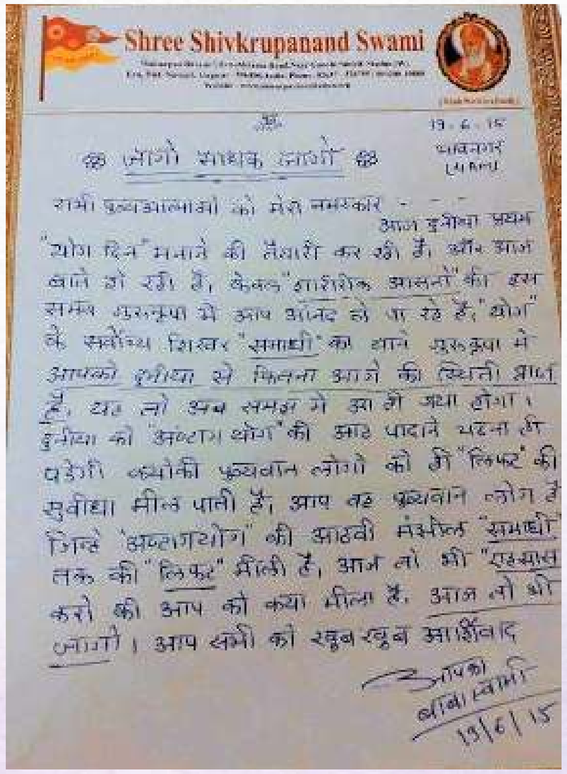

- योग एक जीवंत सजीव ज्ञान है। यह बिना जीवंत गुरु के सीखा ही नहीं जा सकता है। जीवंत गुरु अपनी 'इच्छाशक्ति' से अपने भीतर बहने वाली योग की सामूहिक शक्ति आपके भीतर प्रवाहित कर देता है। इसको ही '**गुरुकृपा**' कहते हैं।
- गुरु भी 'कृपा' नहीं करता। कृपा एक झरने के समान उसके भीतर से सदैव बहते रहती है। झरने के पास रहकर हमारा 'स्नान' नहीं हो जाता, स्नान करने के लिए हमें झरने के नीचे ही जाना होता है। क्योंकि झरना अपने एक निच्छीत (निश्चित) स्थान पर ही बहते रहता है।
- ठीक उसी प्रकार, गुरु का कृपारुपी झरना भी अपने ही आभामंडल के क्षेत्र में बहते रहता है।
- हम जब उसे समर्पित होते हैं, हमारे ऊपर उसकी कृपा हो जाती है। हमें समर्पित शरीर से नहीं, आत्मा के भाव से होना पड़ता है। **गुरुकृपा आत्मा से आत्मा पर ही होती है।**

उपसंहार: आत्मशान्ति से विश्वशान्ति की शुरुआत

आजकल वर्तमान समय में हम सभी आसपास के वातावरण से परेशानी महसूस करते हैं। समाज में व्याप्त बुराइयाँ, अपराध, नशे की प्रवृत्ति, जातिभेद, धर्मभेद, अशान्ति से हम परेशान हैं और इसे दूर करने का मार्ग ढूँढ़तें हैं। जब हमें मार्ग नहीं मिलता, हम दु:खी होते हैं।

पिण्डे ब्रह्माण्डे ब्रह्माण्डे पिण्डे

इन सब का एक ही हल है – हम सिर्फ अपने-आप को सुधार लें, इससे समाज-राष्ट्र-विश्व सुधर जाएगा। हम अपने को छोड़कर दूसरों को सुधारने का प्रयास करते हैं, किन्तु आवश्यकता है स्वयं को सुधारने की। और इसका मार्ग है **आत्मज्ञान।** जब आप आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और जैसे ही आत्मा का प्रकाश आपको प्राप्त हो जाता है, सबकुछ स्पष्ट दिखने लगता है। क्या अच्छा है, क्या बुरा? क्या करना चाहिए, क्या नहीं? क्या सत्य है, क्या असत्य? सबकुछ समझने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्मा को जानना जरूरी है। आत्मा को जानने के लिए आत्मसाक्षात्कार आवश्यक है और आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के लिए एक सद्गुरु आवश्यक है। हमारे जीवन की खोज सद्गुरु की खोज है। सद्गुरु की कृपा में हमें आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो सकता है। लेकिन सिर्फ बीज प्राप्त करने से कुछ नहीं होता। एक बीज को पानी आदि देकर बढ़ाना होता है। गुरु के प्रति समर्पण रूपी पानी सींचने से ही बीज से वृक्ष का निर्माण होता है। यह सब ध्यानयोग द्वारा संभव होता है। प्राय: ध्यानयोग का अर्थ लिया जाता है – सबकुछ छोड़कर जंगल में जाकर प्रभु का ध्यान करना।

वास्तव में ध्यानयोग अर्थात ध्यान + योग। ध्यान को दैनिक कार्यों से जोड़ना। योग का अर्थ है जोड़ना। **यहाँ कुछ भी छोड़ना नहीं है। केवल ध्यान को जोड़ना है।** जीवन में ध्यान को जोड़ने से जो अच्छा है, सत्य है, वही रहेगा, बाकी सब छूट जाएगा। फिर सोचने की आवश्यकता नहीं, क्या अच्छा है, क्या बुरा है? जो रह गया वह अच्छा है, जो छूट गया वह बुरा था। ध्यान से दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है।

ध्यानयोग से जब आपके विचार बदलते हैं तो आसपास का आभामंडल (Aura) भी बदलता है और ऑरा बदलते ही सारा जीवन ही बदल जाता है। जिस प्रकार गाँव की सफाई करनी है तो सफाई की शुरुआत हमारे घर से करनी होगी। जीवन की सभी समस्याएँ विचारों के कारण होती हैं। ध्यान से जब विचार बदलते हैं तो जीवन में कोई समस्या ही नहीं रहती। ध्यानयोग से विचार बदलते हैं। आप अपने विचार बदलिए, सारी दुनिया ही बदल जाएगी। लेकिन इसकी शुरुआत हमें स्वयं से करनी होगी।

आईए, **आज हम सब मिलकर विश्व के नवनिर्माण की शुरुआत हम अपने-आपसे करें।**

(परम पूज्य श्री शिवकृपानंद स्वामीजी द्वारा लिखित संदेश स्रोत: मधुचैतन्य जुलाई-अगस्त-सितंबर २००१)